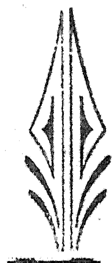
बुद्धत्व की ओर

(ऐतिहासिक उपन्यास)

संत प्रकाशन कुंज का प्रथम पुष्प :—

'बुद्धत्त्व की ओर'

(ऐतिहासिक उपन्यास)



लेखक :—

बसंतकुमार शाक्य 'नीरद'

एम० ए०, एल० टी०, साहित्यरत्न

भूपति पट्टी, फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश)

प्रथम बार १०००] सन् १९५६ ई० [मूल्य २)

प्रकाशक :—

सीताराम शाक्य

भूपति पट्टी फर्रुखाबाद (उ० प्र०)

मुद्रक :—

महादुरराम कुशवाहा,

हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, नीचीबाग,

वाराणसी (बनारस)

समर्पण

श्रद्धेय भिक्षु धर्म रक्षित

के

कर-कमलों में सादर !

परीक्षक तथा भूमिका

लेखकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

सम्पादक—'धर्मदूत' (मासिक)



'बुद्धत्व की ओर' श्रीबसन्तकुमार शाक्य का एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें परिणय के पूर्व से लेकर गृहत्याग पर्यन्त भगवान् बुद्ध का जीवन-चरित्र बड़े ही सुन्दर एवं आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने इसे लिखने में पालि तथा संस्कृत बौद्ध साहित्य का पूर्ण अध्ययन किया है और जो कुछ लिखा है, वह सब ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण एवं प्रामाणिक है।

भगवान् बुद्ध का जन्म भारतवर्ष में हुआ था। वे भारतीय थे। किन्तु, खेद की बात है कि कुछ शताब्दियों तक हम भारतवासी उन्हें भूल गये थे। हमारे पड़ोसी देश लंका, बर्मा, श्याम, कम्बोडिया नेपाल, तिब्बत, चीन, जापान, मंगोलिया आदि में भगवान् बुद्ध तथा उनका धर्म जन-जीवन में परिव्याप्त है। उक्त देश तथागत की पूजा कर अपने को कृतार्थ मानते हैं। उन देशों की असंख्य जनता प्रति वर्ष भारत स्थित बौद्धतीर्थों की यात्रा करने आती है और यहाँ की मिट्टी तक को अपने देश ले जाती है, जिसकी वहाँ पूजा होती है। हमारे पूर्वजों ने ही उन्हें तथागत से परिचित कराया था और बौद्ध संस्कृति एवं धर्म प्रदान किया था, किन्तु यवन-आक्रमण एवं

अनेक ऐतिहासिक परिवर्तनों के कारण हम भारतवासी तथागत तथा उनके धर्म को भूल गये थे। जब तक हम तथागत को मानते रहे, उनके बतलाये हुए मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा के मार्ग पर चलते रहे, तब तक हम सुखी एवं गौरवान्वित रहे, किन्तु तथागत से सम्बन्ध-विच्छेद होते ही हमारा पतन हो गया। यद्यपि हमारे जीवन में उनकी वाणी गूँज रही थी, हमारे प्रत्येक अनुष्ठान में उनके उपदेशों का प्रभाव था, भारतीय संस्कृति में उनकी विचारधारायें घुलमिल गई थीं, किन्तु उनका स्वरूप ऐसा परिवर्तित हो गया था कि हम उन्हें पहचान भी नहीं सकते थे।

इधर लगभग पञ्चदशक हुये कि भारतीय भिक्षु भदन्त महावीर एवं लंका के अनागारिक धर्मपाल के सद्-प्रयत्नों से भारत में पुनः बौद्धधर्म का बिगुल बजा। सम्प्रति भगवान् बुद्ध की २५००वें महापरिनिर्वाण-जयन्ती-वर्ष में तो सारे भारतवासी तथागत से परिचित हो गये हैं। जनता तथा सरकार द्वारा भगवान् बुद्ध की जो पूजा एवं सम्मान किया गया है, वह इस बात का द्योतक है कि हम भारतवासी अब तथागतको पहचान गये हैं। अपने भूले हुए बुद्ध-रत्न को पा गये हैं। उसके साथ ही धर्म एवं संघ की शरण भी हमें शीघ्र प्राप्त होगी।

ऐसे शुभावसर पर श्रीबसन्तकुमार शाक्य ने 'बुद्धत्व की ओर' लिखकर भारतीय जनता का बड़ा कल्याण किया है। मैंने इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ा है। ग्रन्थ की शैली, भाषा, वर्णन एवं विषय-चयन बड़ा ही सुन्दर है। सिद्धार्थकुमार के वैवाहिक जीवन का चित्र लेखक ने बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। केलि-क्रीड़ाएँ, हाव-भाव,

संगीत एवं लास्य के चित्रण में लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। ग्रन्थ में प्रारम्भ से अन्त तक जितने भी उपाख्यान या वार्ताएँ आई हुई हैं, सब बौद्धधर्म के अनुकूल तथा भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बद्ध हैं। लेखक ने काल्पनिक बातों से दूर रह कर इस ग्रन्थ को ऐसा प्राणवान् एवं रोचक बनाया है कि इसे पढ़ते समय पाठक तन्मय हो जाता है।

भगवान् बुद्ध तथा बौद्धधर्म पर हिन्दी में बहुत ही कम लिखा गया है। उपन्यास तो अंगुली पर गिननेमात्र को ही हैं। जो हैं भी, वे अनेक भ्रान्तियों से पूर्ण हैं, जिन्हें पढ़कर दुःख ही होता है। यह ग्रन्थ हिन्दी बौद्ध साहित्य में लेखक की एक महान् देन है। हम लेखक के कृतज्ञ हैं और उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं। आशा है जनता इस ग्रन्थ को अपनाएगी और लेखक को इस महत्वपूर्ण रचना के प्रति सम्मान प्रदान करेगी।

सारनाथ, बनारस।
आषाढ़ पूर्णिमा, बुद्धाब्द २५०० } **—भिक्षु धर्मरक्षित**

विषय-सूची

'प्राक्कथन'

हिन्दी साहित्य-जगत में ऐतिहासिक उपन्यासों का पहले नितान्त अभाव था। श्री वृन्दावन लाल वर्मा इस समस्या का उत्तर लेकर इस जगत् में जब से आये तब से उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों की शृङ्खला सी प्रस्तुत कर दी। उनका यह क्रम अजस्र गति से चल रहा है। इस प्रकार के उपन्यासों का अभाव, हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को भी खटका था, अतः उन्होंने हि० सा० सम्मेलन के एक अधिवेशन में भाषण देते समय इस दिशा की ओर अग्रसर होने और उसकी पूर्त्ति करने के लिए, जयशङ्कर प्रसाद को प्रेरित किया था जिसके फलस्वरूप उन्होंने 'इरावती' की नींव डाली थी। यह शत प्रतिशत ऐतिहासिक उपन्यास है ऐसा मैं दावा नहीं करता और न कोई ऐतिहासिक उपन्यासकार इस प्रकार का दावा प्रस्तुत कर सकता है। इतिहास और साहित्य का सामञ्जस्य कला करती है। कला इतिहास के कुछ तथ्यों की उपेक्षा भी करती है और कुछ तथ्यों को वह निज की रुचि के अनुकूल सजाती है। ऐतिहासिक व्यवधान साहित्यिक-कल्पना के सहारे भरे गये हैं। ये व्यवधान एकदम निराधार साम के सहारे नहीं भरे गये हैं बल्कि ऐतिहासिक संकेतों

सहारे व्यवधानों को साहित्यिक दृष्टिकोण से निरस्तित्व करने का प्रयास किया गया है।

कुमार सिद्धार्थ के जीवन के अठारहवें वर्ष में पदार्पण करने के साथ ही यह उपन्यास प्रारम्भ किया गया है। महाराज की चिन्ता से उपन्यास प्रारम्भ किया गया और कुमार की प्रव्रज्या तक उसका विस्तार हुआ इसमें द्वितीय परिच्छेद से लेकर लगभग 'संदेश' परिच्छेद तक का व्यवधान कल्पना के द्वारा पूरा किया गया है। अन्त के परिच्छेदों के हेतु इतिहास ने ठोस सामग्री दी है अतः उसका भरपूर उपयोग किया गया है। राहुल जी की 'बुद्ध-चर्या' का ऋण विशेषतया अन्तिम परिच्छेदों के हेतु मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ। इस ऋण को मैंने जैसा था वैसा ही स्वीकार नहीं किया बल्कि अपनी कल्पात्मक कान्ति के अनुकूल स्वीकार किया है। इतिहास ने गृह-त्याग के समय मार की एकबार योजना दी है पर मैंने उसे दोहरा दिया है। दोहराने की परिस्थितियाँ भिन्न हैं।

मैंने आदि से अन्त तक इस बात का निर्वाह करने का प्रयास किया है कि कुमार का चरित्र मानवीय ही रहे। उनके जीवन की घटनाओं में देवत्व न झलके और न कहीं अलौकिकता की झाँकी ही को स्थान मिले। हाँ! एक स्थान पर मैं इसमें असफल रहा। कुमार जब अनोमा को पार कर गये और छन्दक को आश्वस्त करने के उपरांत वे कन्तक की ओर

मुड़े और उसके प्रति अपने भाव प्रकट किये, इसके उपरांत उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। दूसरा स्थान 'मार' योजना का है। इसमें कुछ व्यक्तियों के दृष्टिकोण से अलौकिकता हो सकती है पर यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो यवनों और ईसाइयों के 'शैतान' या 'दुष्टात्मा' से इसका रूप भिन्न नहीं। इसका मनुष्य-जीवन से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं। मनुष्य-जीवन से तात्पर्य मनुष्य के विचार जगत् से है। उसमें दो प्रकार के विचार होते हैं, एक दैवी और दूसरे आसुरी। यह आसुरी विचार ही 'मार' की संज्ञा प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त कदाचित् ही कहीं अलौकिकता का पुट आया हो ऐसा मेरा अनुमान है।

इन विचारों के अतिरिक्त मैंने यह भी निर्वाह करने का प्रयत्न किया है कि इसमें बुद्ध-दर्शन से भिन्न विचार न आ जायँ। यद्यपि इस उपन्यास में इस विचार का पोषण करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है क्योंकि उनका दर्शन तो 'बुद्धत्व प्राप्ति' के उपरांत ही आता है। इधर मैंने उन विचारों को दिया है जो विचार एक सभ्य पुरुष के, जीवन, संसार तथा संसार के दुःखों के प्रति हो सकते हैं। उनको किस प्रधान विचार ने गृह-त्याग के लिये प्रेरित किया है, कौन सा विचार उनके विचारों का केन्द्र है। मैंने उसी विचार को द्वन्द्व में उभारने का प्रयत्न किया है। इसकी सफलता, असफलता का निर्णय तो विज्ञ पाठकों पर निर्भर

है। हाँ! मेरा अगला उपन्यास 'निर्वाण की ओर' अवश्य ही ऐसा है जिसमें उनके दार्शनिक विचारों का यथा तथ्य वर्णन हुआ है। उनके विचार-संघर्ष का मूलभूत विचार 'दुःख' है इस दुःख की भावना ने ही 'निर्वाण' की परिकल्पना की, एक ऐसे शरीर की, जिस पर दुःख का कोई भी कारण अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। यदि थोड़ी सी भी सूक्ष्म दृष्टि को लेकर यह विचार किया जाय कि मनुष्य जीवन में दुःख के प्रधान रूप क्या-क्या हो सकते हैं तो हम इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार पायेंगे कि जीवन में जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु ही दुःख के प्रधान हेतु हैं। इन हेतुओं का विनाश दुःख का विनाश है। इनका विनाश कैसे हो? 'निर्वाण' किस प्रकार प्राप्त किया जाय? इन्हीं दो समस्याओं का उत्तर पाने के लिए ही उन्हें प्रासाद का सुख, राज्य का असीम वैभव, मोह और ममता का स्वप्निल संसार त्यागना पड़ा था। वनों में नाना कष्ट झेल, नाना दार्शनिक विचारों का मंथन कर, किसी से संतोष न पाया। जप, तप, योगादि सभी का अभ्यास किया पर किसी से उन्हें संतोष न हुआ। अन्त में वे स्वानुभूत मार्ग पर चले और जिस पर चलकर वे सम्यग् सम्बुद्ध हुए। 'मार' जो निरन्तर इनका पीछा कर रहा था, उस पर इन्होंने 'बुद्धत्व-प्राप्ति' के दिन विजय प्राप्त की। वास्तव में वह दिन इनका मार विजय करने का था। तदनन्तर इन्हें प्रथम, द्वितीय······सप्तम दिवस तक किस प्रकार ज्ञान प्राप्त हुआ

उसकी एक लघु रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ :—

जब भगवान् ने मार पर विजय प्राप्त कर ली तो उनकी बुद्धि सविकारता और सविकल्पता को त्याग कर निर्विकार और निर्विकल्प हो गयी। तदनन्तर प्रज्ञा का प्रादुर्भाव हुआ। प्रज्ञा के प्रादुर्भाव के साथ ही उनकी बुद्धि मल-विक्षेपों से रहित हो गई। मल-विक्षेपों से रहित बुद्धि से उन्होंने सोचा—

(१) "जरा मरण का क्या हेतु (प्रत्यय) है ?"

इस प्रश्न का उत्तर उन्हें इस प्रकार प्राप्त हुआ :—

"जन्म होने से जरा मरण होता है अतः जन्म के प्रत्यय से जरा मरण होता है।"

(२) प्रश्न :—"किस प्रत्यय के होने से जन्म होता है ?"

उत्तर :—"भव (आवागमन) के प्रत्यय से जन्म होता है।"

(३) प्रश्न :—किसके होने से भव होता है ?"

उत्तर :—"आसक्ति (उपादान) के होने से भव होता है।"

(४) प्रश्न :—"किसके होने से उपादान होता है ?"

उत्तर :—"तृष्णा के होने से उपादान होता है।"

(५) प्रश्न :—"किसके होने से तृष्णा होती है ?"

उत्तर :—"वेदना (अनुभव) के होने से तृष्णा होती है।"

(६) प्रश्न :—"किसके होने से वेदना होती है ?"

उत्तर :—"स्पर्श (इन्द्रिय और विषय के मेल) के होने से······।"

(७) प्रश्न :—"किसके होने से स्पर्श होता है ?"

उत्तर :—"षडायतन[1] के होने से स्पर्श होता है ।"

(८) प्रश्न :—"किसके होने से षडायतन होता है ?"

उत्तर :—"नाम रूप के होने से षडायतन होता है ।"

(९) प्रश्न :—"किसके होने से नाम रूप होता है ?"

उत्तर :—"विज्ञान के होने से नाम रूप होता है ।"

(१०) प्रश्न :—"किसके होने से विज्ञान होता है ?"

उत्तर :—"नाम रूप के होने से विज्ञान होता है ।"

इस प्रकार पुनः नाम रूप से विज्ञान और विज्ञान से नाम रूप, नाम रूप से षडायतन, षडायतन से स्पर्श, स्पर्श से वेदना, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से आसक्ति, आसक्ति से भव, भव से जन्म और जन्म सब दुःखों का आकर है अतः इससे दुःखों की उत्पत्ति होती है ।

मन में इनको गुनते-गुनते उनके अन्तर में ज्ञान हुआ, फिर प्रज्ञा, प्रज्ञा से विद्या और विद्या से आलोक । आलोक ने उन्हें निम्न प्रकार का ज्ञान-क्रम दिया :—

(१) जन्म न हो तो मनुष्य जरा मरण आदि के दुःखों से बच सकता है ।

(२) यदि आवागमन न हो तो जन्म न हो । अतः आवागमन का निरोध करना चाहिए ।

(३) आवागमन आसक्ति के कारण होता है अतः आसक्ति का निरोध करना चाहिए ।

---

(१) षडायतनः —चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन ।

(४) तृष्णा के न होने से उपादान नहीं होता अतः तृष्णा का निरोध करना चाहिए।

(५) वेदना के न होने से तृष्णा नहीं होती। अतः वेदना का निरोध करना चाहिए।

(६) स्पर्श न होने से वेदना न होती। अतः स्पर्श का निरोध करना चाहिए।

(७) षडायतन नहीं होने से स्पर्श नहीं होता। अतः षडायतन का निरोध करना चाहिए।

(८) नाम रूप के न होने से षडायतन नहीं होता। अतः नाम रूप का निरोध करना चाहिए।

(९) विज्ञान के न होने से नाम रूप नहीं होता। अतः विज्ञान का निरोध होना चाहिए।

(१०) नाम रूप के न होने से विज्ञान न होता। अतः नाम रूप का निरोध करना चाहिए। (दीर्घ निकाय से)

इस प्रकार एक के निरोध से दूसरे का निराध और सबके निरोध से सबका निरोध हो जाता है।

दीर्घनिकाय के अनुसार संक्षिप्त बौद्ध धर्म सप्त धर्म-रत्न है :—

(१) चार स्मृत्युप्रस्थान, (२) चार सम्यग् प्रधान, (३) चार ऋद्धि पाद, (४) पाँच इन्द्रिय, (५) पाँच बल (६) सात बोध्यंग और (७) आर्य अष्टांगिक मार्ग। यही ३७ शिक्षमाण धर्म हैं।

(इनका विशेष विवरण 'निर्वाण की ओर' उपन्यास की भूमिका में देखिए)

आर्यसत्य चतुष्टय :—

(१) दुःख, (२) दुःख समुदय, (३) दुःख निरोध, (४) दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा।

(१) दुःख :—पंचोपादान स्कन्ध ही दुःख है।

पंच उपादान :—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान।

(२) दुःख समुदय :—तृष्णा भव का कारण है।

(३) दुःख निरोध :—तृष्णा के निरोध से निर्वाण लाभ।

(४) दुःख निरोध-गामिनी-प्रतिपदा :— इसे अष्टांगिक मार्ग कहते हैं। वे ये हैं :—

सम्यग् दृष्टि, सम्यग् संकल्प, सम्यग् वचन, सम्यग् कर्मान्त, सम्यग् आजीव, सम्यग् व्यायाम, सम्यग् स्मृति और सम्यग् समाधि। इसी उक्त अष्टांगिक मार्ग को मध्यमा प्रतिपदा भी कहते हैं। इनका सविस्तार वर्णन आपको 'निर्वाण की ओर' उपन्यास में या बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में प्राप्त हो सकता है।

प्रस्तुत उपन्यास की भाषा के विषय में मुझे इससे अधिक कुछ नहीं कहना है कि मैंने भाषा के स्वाभाविक प्रवाह की रक्षा करने का यथोचित प्रयत्न किया है। कहीं-कहीं पर भाषा काव्यमयी हो गई है। वास्तव में उन स्थलों का अंकन करते

समय मैं यह बात बिल्कुल ही भूल जाता था कि मैं गद्य लिख रहा हूँ या पद्य, विचारों की गहनता में भाषा की सरसता की रक्षा करना कितना दुष्कर होता है यह तो एक लेखक हृदय ही जान सकता है।

इस उपन्यास का जैसा नाम है उसके अनुसार इसमें सरसता की आशा कम ही की जा सकती है। फिर भी मैं अपने प्रयत्न भर जितनी सरस सामग्री इसके लिए जुटा सकता था, उसके जुटाने में कितना सफल रहा यह पाठक ही खोजें।

इन सब बातों के अतिरिक्त मैं पूज्य भिक्षु धर्मरक्षितजी की अमूल्य सहायता को नहीं भुला सकता जिन्होंने अपने अमूल्य समय में से कुछ समय इस उपन्यास को आद्यन्त शब्दशः सुनने के लिए दिया। मैं उनका ऋण किस प्रकार चुका सकता हूँ?……भाषा, भाव, ऐतिहासिक तथ्य, दार्शनिक विचारों की स्वस्थता, इन सब पर उनकी तीव्र दृष्टि गई है और निरर्थक सामग्री को उन्होंने बिल्कुल निकलवा दिया है। एक परिच्छेद, जो इस पुस्तक के अन्य सभी परिच्छेदों से बड़ा था, उसे उन्होंने, इतिहास-सम्मत न होने से इसमें से निकलवा दिया है। उस परिच्छेद के लिए मुझे अधिक श्रम करना पड़ा था फिर भी मुझे अपने श्रम के मोह को त्यागना पड़ा।

कला की दृष्टि से यह कहाँ तक सफल कहा जा सकता है इसका निर्णय तो कला के पारखी ही कर सकते हैं, पर मैं

इस विषय पर इतना ही कह सकता हूँ कि प्रस्तुत उपन्यास को अपनी दृष्टि से जितना कलात्मक बना सकता था बनाने का प्रयत्न किया। यहाँ पर मैं यह लिख गया कि मैंने इस पुस्तक को कला की दृष्टि से सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया, पर यह कथन त्रुटि पूर्ण है। कला के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता वह स्वयं ही सुन्दर होती है। वह सीधी हृदय से निकलकर हृदय को ही प्रभावित करती है। अतः इस प्रकार का प्रयत्न कला ने मेरे हृदय और मस्तिष्क पर अधिकार जमा करके मुझसे कराया है। मैंने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया है।

अन्त में मैं इसकी पूर्ति में तथागत की कृपा ही पाता हूँ। जिनकी कृपा यदि मुझ अकिंचन पर न होती तो मैं इतने थोड़े से समय में इस पुस्तक को कदाचित ही दे पाता।

—'लेखक'

पहला परिच्छेद

चिन्ता

महामात्य !

महाराज !

"कुमार को ज्यों-ज्यों मैं अपने समीप लाना चाहात हूँ त्यों-त्यों वे मुझसे उतने ही दूर होते हुए प्रतीत होते हैं। ज्योतिषियों की वाणी उतनी ही स्पष्ट होती जाती है जितना कि मैं उसको मृषा बनाने का प्रयत्न करता जाता हूँ। मैं उन्हें अपने अंक में भरता जाता हूँ पर न जाने कौन से अदृश्य हाथ उनको मेरे अंक से दूर करते जा रहे हैं? अमात्य! ज्योतिषियों ने कुमार के विषय में दो बातें कही थीं क्या उनमें से एक ही सत्य हो सकती है, दूसरी नहीं? तो क्या मैं समझूँ कि 'बत्तीस लक्षणों' से युक्त मानव की एक ही गति होती है?............यदि दूसरी गति होती

है या हो सकती है, तो हमारे प्रयत्न दिन-पर-दिन व्यर्थ क्यों जा रहे हैं ? क्यों नहीं वे सात रत्नों से युक्त चक्रवर्ती राजा हो जाते हैं ? आमोद-प्रमोद के नाना आकर्षण, नाना ढंग, क्यों प्रभावहीन से, शक्तिहीन से हो गए हैं ? कहाँ गया संगीत का वह प्रभाव जिससे मनुष्य की कौन कहे पशु-पक्षी भी अपने को दूर नहीं रख पाते हैं ? कहाँ गए कामिनियों के वे हाव-भाव, नयनों के कटाक्ष ?·········किसी में अब धार ही नहीं रही ! सभी अपना-अपना धर्म त्याग चुके। कुमारियों से घिरे रहने पर भी उनके अन्दर किसी भी प्रकार के भाव—उत्पन्न नहीं होते ! वे गम्भीर विचार-सागर की अतल गहराइयों में डूबे रहते हैं। विलासिता के ज्वार उनकी अटलता से, उनकी निस्पृहता की शिला से टकराकर अपना अस्तित्व खो बैठते हैं। महारानी भी इसी चिन्ता में घुली जा रही हैं। उनको देख मेरी चिन्ता द्विगुणित हो जाती है। हाँ !·········जिसका मुझे भय था वही अब शनैः शनैः मेरे समक्ष आ रहा है। मैंने आयु की वास्तविक अवस्थाओं से अनभिज्ञ रखने के हेतु उनके प्रासाद में जरा-जीर्ण स्त्री-पुरुष के न जाने की आज्ञा घोषित करा दी है। उन्हें जन्म-काल ही से श्वेत छत्र धारण कराया जाता है जिससे उन्हें शीत, उष्ण, तृण, धूलि और ओस कष्ट न दें, जिससे उन्हें कोई रोग न आ घेरे। वे दुःख के किसी भी प्रकार का अनुभव न कर सकें। उनके आवास के हेतु तीन प्रासाद-पृथक् पृथक्,

तीन ऋतुओं के लिए बनवा दिए गये। एक वर्षा-ऋतु के लिए, दूसरा हेमन्त के लिए और तीसरा ग्रीष्म-ऋतु के लिए। वहाँ पाँचो प्रकार के भोगों का प्रबन्ध करा दिया गया पर सभी व्यर्थ.........।"

"इतने खिन्न न हों महाराज! मैं इससे निस्तार का कुछ न कुछ उपाय अवश्य ही करूँगा। आपको चिन्तातुर देख मैं स्वयं साहस खो बैठता हूँ। महाराज! इस वृद्ध ने आज तक हारना नहीं जाना, फिर इस विषय में वह क्योंकर हार स्वीकार करे।"

"आप मुझे क्या बच्चा समझ रहे हैं अमात्य! जो मुझे इस तरह फुसलाने का प्रयत्न कर रहे हैं?"

"नहीं राजन्! आप ऐसा कहकर मेरे अनुभवों की शान पर चढ़ी हुई इस तीव्र दृष्टि की उपेक्षा कर रहे हैं।"

"आपके ये शब्द मुझे मौन रहने को बाध्य करते हैं पर हृदय की खाई को पाटना असम्भव है, अमात्यवर!"

"समय सब खाइयों को पाट देगा, राजन्! उसकी शक्ति अजेय है, वह सम्भव को असम्भव और असम्भव को सम्भव बना देता है।"

"मैं उसके आनुकूल्य की प्रतीक्षा में हूँ।"

"इन्द्र के वैभव को भी लज्जित करने वाला आपका प्रासाद-वैभव, स्वर्ग-सी सुख-सुविधायें, पंच-भोगों की यथेष्ट मात्रा, कामना की रुनक्-झुनक्, सुर-सुन्दरियों के लास नृत्य,

प्रतिष्ठा की अमराइयाँ तथा कुबेर सम सम्पदा, क्या इन सबका त्याग उनके लिए सम्भव है महाराज ?......... जिस समय इन सबके त्याग की सजीव समस्या उनके समक्ष आवेगी, उस समय इन सबकी महत्ता उनपर स्वयं ही स्पष्ट हो जायगी।"

"अमात्य ! तर्क को प्रश्रय देकर आप वास्तविकता से दूर जा रहे हैं।"

"महाराज ! लोभ-पाश इतना प्रबल और व्यापी है कि जिससे अछूता रहना असम्भव है। मैं इस संसार में ऐसे अनेक व्यक्तियों को देख रहा हूँ, जिनसे साधारण सी गृह सम्पत्ति का लोभ तक नहीं त्यागा जाता, फिर भला, जहाँ इतनी अतुल सम्पत्ति, ऐसा अनिन्द्य वैभव, इन सबके त्याग की तो चर्चा ही व्यर्थ है। महाराज ! सन्तान जबतक परिणय-प्रणय के रसार्णव में गोते नहीं लगाती तभी तक वह त्याग और तप की बात भले ही सोच ले पर इसके उपरान्त नहीं।"

"यह बात तो आपने ठीक ही कही, पर हमें तो उनकी प्रवृत्ति का परिचय तक प्राप्त नहीं। मैं डर रहा हूँ कि कहीं वे अपनी विवाहिता से भी आकर्षित न हुए तो उसे आजन्म वियोग की वह्नि ही में जलना पड़ेगा। उसका दुःख देखकर क्या यह छाती फट न जायगी ! जहाँ एक ही दुःख का भार वहन नहीं हो सकता, वहाँ दो-दो दुःखों के भार की चर्चा ही व्यर्थ है।"

"दो-दो क्या शत-शत दुःखों को भी सहन करने की क्षमता समय में है, महाराज !"

"आप समय के तर्क-अस्त्र से मेरे सभी वार झुठला रहे हैं, ऐसा क्यों ?"

"समय-अस्त्र की प्रबलता ने संसार के कठोर-से-कठोर करों को भी काट दिया है महाराज ! मैं ही क्या प्रत्येक व्यक्ति समय-सीमा से आबद्ध है। देवताओं ने यद्यपि अपने अमरलोक की रचना समय-सीमा से बहुत दूर की है, फिर भी वे समय की शक्ति के समक्ष नत हैं।"

"ओह ! छोड़िए इस समय के तर्क को। मेरा मन त्रस्त है मैं कुमार के विषय में जितना विचार करता हूँ, मेरा चित्त उतना ही क्षोभ को प्राप्त होता जाता है। हाँ ! अमात्य यह समय तो कदाचित् कुमार की शस्त्र शिक्षा का है। आप उनकी शस्त्र-शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध करें। क्या कुमार इस दिशा में अपनी रुचि दर्शाते हैं ?"

"हाँ राजन् ! शिक्षकों का तो कथन है कि जिस दाँव को हम सिखलाना चाहते हैं उसे वे इस प्रकार सीख लेते हैं मानों वे पहले ही से सीखे हुए हों।"

"क्या आपने कभी कुमार की शस्त्र-शिक्षा का निरीक्षण किया है ?"

"राजन् ! कई बार।"

"तो आपने शिक्षकों के कथन को सत्य पाया ?"

"सत्य राजन् ।"

"यह जानकर चित्त हलका हुआ ! आप इस समय भी उनकी शिक्षा के निरीक्षणार्थ जावें और उनकी प्रगतिका पूर्ण परिचय मुझे दें ।"

"जो आज्ञा राजन् !"

इतना कह अमात्य महाराज शुद्धोदन के कक्ष से बाहर हो गए। महाराज को अब एकान्त मिला। भाव-प्रवण एवं चिन्ताग्रस्त मनुष्य के लिए एकान्त अभिशाप होता है। वह भाव-संघर्ष को कितना भी रोकने का प्रयत्न क्यों न करे पर रोक नहीं सकता। वे भी उसको न रोक सके और निज के विचारों की रंग-बिरंगी तूलिका इस प्रकार चलाने लगे :—

"कुमार अस्त्र-शस्त्रों में रुचि दिखला रहे हैं, यह जानकर मेरा हृदय संतुष्ट हुआ। मैं चाहता हूँ कि मेरा कुमार चक्रवर्ती राजा हो। आशा के नूपुरों की झंकार सुदूर प्रान्त से आ रही है। अभिलाषाएँ रास रचाने की सज्जा प्रस्तुत करने में संलग्न हैं........" इस प्रकार सोचते-सोचते महाराज इतने हर्षित हो जाते हैं कि अमूल्य हर्ष-रत्नों की मंजूषा से, नयन, दो हर्ष-रत्न ढुलका देते हैं। कुछ क्षणों तक वे किसी अन्य संसार में विचरते रहते हैं फिर चेतना उन्हें शनैः शनैः इस संसार में ले आती है। विचारों की गरिमा से बोझिल कुमार की मुख-मुद्रा सहसा उनके मानस-सर में छहरती हुई

एक निमेष के लिए आई और अन्तर्ध्यान हो गई। महाराज की विचार-सरसी में हलचल उत्पन्न हो गई।

"·········विडम्बना! महान् विडम्बना!! कहाँ तो यह निर्वेद की छाया और कहाँ यह भावाकर्षण! इनकी कला अब प्रभाव-शून्य है। निर्वेद के गाम्भीर्य पर इनका प्रभाव ही क्या? वे तो उसी में समाकर निरस्तित्त्व हो जायँगे। कुमार! तुम क्या जानो कि तुम्हारी चित्त-वृत्ति-धारा को अन्य दिशा देने के हेतु मैंने कौन-कौन से यत्न किए? कुमार! क्या तुमने कभी मेरी हृदय-वेदना को भी भापा है?···तुमने मेरी अमूल्य भाव-मणियोंकी माला को टूटते देखा है?···पर तुमको इन सब पर विचार करने और देखने का समय ही कहाँ! क्या संसार में तुम्हें कहीं सार ही दृष्टिगोचर नहीं होता? तुम किस लोक में खोए रहते हो? कौन-सा विचार तुम्हारे जीवन का श्वाँस बना हुआ है? अभी तो तुमने इस लोक में रहकर वास्तविकता की झाईं भी नहीं देखी है, फिर भी तुम अपने से, अपने वातावरण से इतने निर्लिप्त रहते हो?··· यह तुम्हें चाहिए नहीं। जिसने इस जगजीवन की धूप-छाँह का सजीव अनुभव ही नहीं किया है, वह इस जग और जग-जीवन के विषय में किस प्रकार अपनी धारणा को एक निश्चित रूप दे सकता है? वह किस प्रकार यह कह सकता है कि यह संसार असार है?·····कुमार! मैं तुम्हें किस प्रकार समझाऊँ कि यह संसार सम्यग सारयुक्त है? इसको निस्सार कहना अविचार है,

भूल है। पंक से सार ग्रहणकर पंकज सारयुक्त जीवन प्राप्त करता है। वह पर की प्रसन्नता के हेतु अपने को मिटा देता है कुमार। तुम तो अपने माता-पिता ही को प्रसन्न नहीं कर पा रहे हो। मेरा हृदय वेदना से छलनी हुआ जा रहा है पर हाय! तुम.........” श्रमाधिक्य से नाड़ियाँ शिथिल हो गईं और उन्होंने कार्य करना बन्द कर दिया।



दूसरा परिच्छेद

'जिज्ञासा'

कुमार देवदत्त ने सिद्धार्थ कुमार के प्रासाद की ओर जाकर देखा तो उनको उद्यान में एक प्रस्तर खण्ड पर बैठे हुए विचार मग्न पाया। देवदत्त के लिए उनका यह चिर परिचित रूप था। इसपर उन्हें आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने कभी भी इसपर ध्यान नहीं दिया था पर आज वे स्वतः ही अपने भाई के विषय में सोचने लगे। इसी विचार की दशा ही में वे उन्हें कुछ क्षणों तक देखते के देखते ही रह गए। उनका मस्तिष्क भी विचार-संकुल हो गया—"भ्राता जी इस प्रकार ध्यान-मग्न, न जाने क्या-क्या सोचा करते हैं? मैं जब भी इनके साथ खेलने की इच्छा करके आता हूँ, तभी मुझे यह विचार-सागर में डूबते-उतराते ही दीखा करते हैं। आमोद की असीम आकर्षणमयी सामग्री में इनकी वृत्ति नहीं रमती। किसी भी क्षण इनकी यह विचार-तन्द्रा नहीं टूटती। यह

विलासिता की अमराइयों में ही रहते हैं, पर इनपर उनका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। क्या इन वस्तुओं में कोई आकर्षण शेष नहीं रहा? क्या उपवन की इस सुषमा में चित्त को आकर्षित करने की कोई सामग्री नहीं रही? क्या सृष्टि के सभी शरकुन्द हो गए·········?"

इधर जब कि कुमार देवदत्त इस प्रकार सोच रहे थे तो कुमार सिद्धार्थ भी विचारमग्न हो इस संसारकी क्षणिकता और तज्जनित दुःख पर विचार कर रहे थे—"यह संसार क्षणभंगुर है। संसार की प्रत्येक वस्तु क्षणभंगुर है। मनुष्य उसके झूठे मोह-जाल में बद्ध हो जाता है, इसलिए वह दुःख भोगता है। जो उत्पन्न हुआ है उसका विनाश ध्रुव है। इस दुःखदाह में दहती मानवता को किस प्रकार बचाया जाय? इस कराल शूल में बिद्ध मानव को किस प्रकार स्वस्ति मार्ग पर लाया जाय? मनुष्य इस जगत में क्यों जन्म लेता है? उसके जीवन का परम लक्ष्य क्या है?·········वह पशुवत् अपने जीवन को आहार, निद्रा, भय और मैथुन ही के घेरेमें घेरे रहता है? इससे निकलकर वह आध्यात्मिक-जग की बात क्यों नहीं सोचता? ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी सन्त पुरुष ने आज तक भव-दुःख से निस्तार का कोई मार्ग नहीं दर्शाया। मैं किस दिन जन-कल्याणकारी मार्ग को खोज सकूँगा? मैं किस दिन इस वह्नि में झुलसती मानवता का उद्धार करने में समर्थ हो सकूँगा?······मुझे अपने पर विश्वास है कि एक-न-एक दिन

मैं संसार के कल्याणार्थ मार्ग प्राप्त करने में सफल हो सकूँगा। मेरा हृदय मानव-सेवा के हेतु व्याकुल हो रहा है। मेरा मन परछीने पत्ती की भाँति तड़पकर रह जाता है। मेरा करुणा-विगलित हृदय बार-बार न जाने क्यों सागर भर लाता है!' मानव, मानव पर करुणा करे यह ही उसका धर्म है। वह दो दिन के इस भव-जीवन में निज को तथा निज के कर्त्तव्यों को भूल जाता है। वह पथ-भ्रष्ट हुआ, दुःख पा रहा है। वह बराबर इसी प्रकार दुःख उठाता रहेगा। एक ही जन्म तक नहीं, बल्कि अनेकों जन्मों तक दुःख पाता रहेगा। वह तब तक आवागमन के बन्धन से मुक्त नहीं होता, जब तक वह निर्वाण प्राप्त नहीं कर लेता। जीव का आवागमन से मुक्त होना ही भव-दुःखों से मुक्ति पाना है। यही मनुष्य-जीवन का परम लक्ष्य है। अपने लक्ष्य को त्याग वह न जाने किसमें भूला हुआ मार्ग-भ्रष्ट हो गया है?

कुमार सिद्धार्थ की विचार-धारा इस प्रकार अपनी दिशा में बही जा रही थी। उधर कुमार देवदत्त कुछ क्षण तक शान्त रहे, उसके उपरान्त वे अपनी जिज्ञासा न रोक सके। निश्चय किया कि आज वे अपने भ्राता से यह बात पूछकर ही रहेंगे कि दिन-रात वे क्या सोचा करते हैं? इस प्रकार नेत्रों में प्रश्न-प्रकाश लिए वे उनकी विचार-तन्द्रा भंग करने के हेतु आगे बढ़े।

"भाई सिद्धार्थ! देवदत्त का प्रणाम स्वीकार हो।" देवदत्त को इस वाक्य ने कुमार सिद्धार्थ की विचार-धारा में इस

प्रकार विक्षेप उत्पन्न कर दिया, जिस प्रकार वारि-धारा के मध्य एक विशाल प्रस्तर-खण्ड आकर विक्षेप उत्पन्न कर देता है। नेत्र निमीलनोपरान्त शनैः शनैः कुमार ने इस प्रकार नेत्र खोले मानों शान्तरस में विक्षेप के प्रथम चरण का आघात पहुँचा हो।

"तुम यहाँ कब से उपस्थित हो भाई ?"

"अभी कुछ ही क्षण पूर्व का……।"

"आज तुम्हारी मुख-मुद्रा और नेत्रों से कुछ अद्भुत-सी झलक मिल रही है। इसका क्या कारण है, देवदत्त ?"

"आपने उचित ही समझा। मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, पर पहले वचन दीजिए कि आप मेरे प्रश्नों का सही-सही उत्तर देंगे।"

"भाई! क्या मैंने कभी किसीसे मिथ्या भाषण भी किया है।"

"नहीं कुमार! ऐसा तो बिलकुल नहीं। मेरे हृदय की अधीरता के कारण मुझसे यह त्रुटि हुई। मैं आपका क्षमा-प्रार्थी हूँ।"

"अपना प्रश्न कहो, देवदत्त!"

"आप एकान्त में सदैव मन-ही-मन क्या-क्या सोचा करते हैं ?"

किञ्चित विहँसकर—"भव और भव-जीवन ही मेरी विचार सामग्री है।"

"इसपर आपको अभी से सोचने की आवश्यकता ?"

"तो फिर कब से"

इस प्रश्न को सुनकर देवदत्त मनमें कुछ गुनने लगे। वे सोचते हैं—"क्या मैं इन्हें जीवन की उस परम दुःखमयी अवस्था का परिचय दूँ? क्या इन्हें इनके कृत्रिम वातावरण से परिचय करा दूँ?······नहीं ऐसा मैं नहीं करूँगा।" ऐसा सोचकर उन्होंने अवस्था का नाम न लेते हुए उनके प्रश्न के उत्तर में कहा—"आगे भविष्य में, कुछ काल व्यतीत होने के बाद से।"

"तो अभी खेलूँ और खाऊँ, यही न।"

"ठीक कहा भ्राता जी।"

"तुम कितने भोले हो मेरे भाई। तुम यह समझने का प्रयत्न क्यों नहीं करते कि खेलना, खाना तो मनुष्य-जीवन के स्थूल उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं, जिनसे हमें जीवन का कोई भी सार प्राप्त नहीं होता। ये सब निस्सार वस्तुएँ हैं अतः इनमें अपने अमूल्य समय को नष्ट नहीं करना चाहिए। इस जीवन का कुछ और ही उद्देश्य है, जिसको पूर्ण करना मनुष्य-जीवन को सार्थक बनाना है। हमें चाहिए कि हम हर क्षण तथ्यपूर्ण कार्य करते रहें।"

"भ्राता जी! मैं इन बातों को समझने में असमर्थ हूँ। इनको समझना, इनपर सोचना और इनके अनुकूल, आचरण करना तो ऋषि-मुनियों का कार्य है, हमारा नहीं। हम इस दुश्चिन्ता में क्यों पड़ें?"

"दुश्चिन्ता! आश्चर्य! महान् आश्चर्य इसे तुम दुश्चिन्ता कहते हो। यह दुश्चिन्ता नहीं भाई सुचिन्ता है। यही मनुष्य-जीवन का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। दुश्चिन्ता का तो रूप ही भिन्न होता है। तृष्णा ही इसकी जननी है। मनुष्य को तृष्णा के पाश से बचाना चाहिए। यह मेरा है, यह तेरा है, अभी यह करना शेष है, अभी वह करना शेष है। यह पिता है, वह पुत्र है। यह मेरा अमुक है, वह मेरा अमुक है। ये सब तृष्णा के ही रूपान्तर हैं। एक राजा दूसरे राजा पर आक्रमण क्यों करता है?······राज्य बढ़ाने की तृष्णा से, सुखोपभोग की चाहना से। यह सारा प्रसार तृष्णा ही का है।"

"बस भाई बस! अब अधिक मैं इस उपदेश को सुनना नहीं चाहता। मैं यह सुनकर कहीं पागल न हो जाऊँ।"

"पाग···ल! तो इसे तुम पागल का प्रलाप समझते हो? यह तुम्हारी महान् भूल है भाई! हाँ, तो अभी तुमने क्या कहा था कि ये सब सोचने और इन पर आचरण करने का समय भविष्य में आएगा, वह भविष्य का समय कैसा होगा?"

"हाँ भाई! यह बचपन तो खेलने-खाने का है। इसके अतिरिक्त हमारा जन्म राजकुल में हुआ है। इसपर भी यदि हम सुखोपभोगों से वञ्चित रहें तो हमसे अधिक और कौन हत-भाग्य होगा? नहीं भाई मुझसे तो यह कुछ भी नहीं सोचा जाता। यह वैभव, आमोद-प्रमोद और यह राज्य मुझसे तो

इनका मोह त्यागा नहीं जाता, भाई ! इन सब पर आप ही सोचें, इन सब पर !"

"भाई ! संसार के भौतिक आकर्षणों ने तुम्हें बुरी तरह से अपने जाल में आबद्ध कर लिया है। तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं। भौतिक आकर्षणों के झूठे रूप मनुष्य-जीवन में मोह के मिस जन्म न ले सकें तो समझना चाहिए कि उसने प्रथम सीढ़ी को पार कर लिया। इस प्रकार मनुष्य जब इन्द्रियों सहित मन पर पूर्णरूपेण संयम कर सके तो समझो कि उसने अपने प्राप्तव्य की समीपता ग्रहण कर ली। आकर्षणों के प्रति मोह त्याग के हेतु तप, त्याग और लगन की नितान्त आवश्यकता होती है।"

"आपकी इन बातों को श्रवण कर मुझे तो भय हो रहा है कि कहीं आप राज्य-त्याग न कर दें। आपकी इस प्रकार की मानसिक स्थिति चिन्ताजनक है। मैं आज ही महाराज को इस बात की सूचना दूँगा।"

"भाई ! यह तुम क्या करने जा रहे हो ? क्या तुमने मुझे और मेरे विचारों को ठीक से समझ लिया है, जो तुम इस प्रकार महाराजको सूचना देनेकी बात सोच रहे हो। क्या उनका मस्तिष्क इस प्रकार की सूचना पाकर चिन्ताग्रस्त न हो जायगा ? पूर्णिमा के चन्द्र को ग्रहण न लग जाएगा।"

"तो आप अपने विचारों से मुझे अवगत कराइए और मेरी भ्रान्त धारणा को भगाइए।"

"सुनो देवदत्त ! यह जीवन एक संघर्ष है। इसमें स्थिर रहने के लिए दृढ़ता चाहिए। यदि हम इन जीवन-संघर्षों से ऊबकर वैराग्य को प्राप्त होते हैं तो यह वैराग्य का वास्तविक रूप न होगा। यह घृणा की काया होगी। जिसपर विराग की राख लगी होगी। यह जीवन की वास्तविकताओं, जीवन की कठोरताओं से पलायन होगा। हमें इस संसार में रहना है। इसमें ही रहकर हमें अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण करनी है। अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण करने के लिए संसार की वस्तुओं का भौतिक-आधारों का अवलम्ब ग्रहण करना है। उनसे अवलम्ब लेते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हम उनसे केवल सहारा ही लें। उनसे अपना नाता न जोड़ें। हम अपनी रागात्मिक-वृत्ति का उससे लगाव न होने दें। मनुष्य जिस प्रकार एक सरिता उतरने के लिए नौका का अवलम्बन लेता है और सरिता पार कर वह उसको छोड़कर चला जाता है, मानों कि उसका उससे कोई लगाव ही न रहा हो। ठीक इसी प्रकार हमारी भी वृत्ति होनी चाहिए।

"यह तो आपही कर सकते हैं भ्राता जी ! मुझसे यह नहीं होने का। भला यह कैसे सम्भव हो सकता है कि जो वस्तुएँ हमारे जीवन में काम आवें उनसे हम अपनाया न रखें, उनसे हमें मोह न हो ?"

"भाई ! प्रिय वस्तुओं से वियोग हो जाने और अप्रिय से संयोग होने से ही हमें दुःख प्राप्त होता है। यदि हम दुःख

न उठाना चाहें तो हमें कोई भी वस्तु प्रिय और कोई भी वस्तु अप्रिय नहीं होनी चाहिए। यह दुःख ही प्राणियों को अपनी भट्ठी में भून रहा है। उनको अपना भोजन बना रहा है। इस दुःख से छुटकारा पाना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। मुझे तो इसके निस्तार का कोई मार्ग ही नहीं मिल रहा है।"

"इन सबपर तो मैं वृद्ध होने पर ही सोच सकूँगा। इससे पहले इनपर सोचने का मेरे पास एक क्षण भी समय नहीं है।" इतना कहकर वह पछताने लगा। धोखे में उसके मुख से जीवन की परम दुःखमयी अवस्था का नाम निकल गया। अब पछताने से क्या होता है, जब धनुष से वाण निकल गया और मन के प्रतिकूल जब वह फल भी दे चुका। कुमार सिद्धार्थ ने वही प्रश्न पूछा जिसका उन्हें भय था।

"वृद्ध होंगे तब, भाई! यह वृद्ध होना कैसा होता है? तुम देवदत्त से वृद्ध किस प्रकार हो जाओगे?"

इस प्रश्न के सुनते ही देवदत्त सकपका गया। इसी मध्य अमात्य आ गए। उन्होंने सिद्धार्थ के प्रश्न को सुन लिया था। अतः वे देवदत्त के उत्तर देने के पूर्व ही बोल उठे—"कुमार! आपका यह समय तो शास्त्र-विद्या के लिए निश्चित है। सशिक्षक, मैं आप लोगों की जब प्रतीक्षा करते-करते थक गया तो आपको स्मरण दिलाने के लिए इधर चला आया। आप शिक्षणशाला में पधारें और कुमार देवदत्त आप भी। महाराज ने निरीक्षण हेतु मुझे भेजा है।"

"ओह ! मैं तो भूल ही गया। पिता तुल्य अमात्यवर प्रणाम।" निद्रा से जागते हुए से कुमार ने प्रणाम निवेदन किया। देवदत्त ने भी अपने भाई का अनुसरण करते हुए अमात्य के प्रति अपना प्रणाम निवेदन किया। पुलकित मन अमात्य ने उन्हें आशिर्वाद दिया। उन्होंने दोनों कुमारों को आगे-आगे चलने के लिए कहा और वे स्वयं उनके पीछे-पीछे चलने लगे। वे सोचते जा रहे थे—"यदि मैं किंचित् कालो-परान्त आता तो देवदत्त, कुमार सिद्धार्थ से वृद्धावस्था की भयावनी एवं कष्टकर दशा से अवगत करा देते। उसका उनके कोमल चित्त पर कैसा प्रभाव पड़ता, यह सोचकर शरीर रोमांचित हो जाता है। कैसा सुकाल था जो मैं आ गया, नहीं तो अनर्थ होने में अन्तर ही कितना रह गया था ?

तीसरा परिच्छेद

'साधन'

"अमात्य! क्या वास्तव में कुमार देवदत्त सिद्धार्थ से इस प्रकार की चर्चा करने में निरत थे? क्या आप उनकी चर्चा आद्यान्त सुनी थी?"

"नहीं महाराज! कुमार सिद्धार्थ के भावों से तो ऐसा प्रतीत नहीं हो रहा था।"

"कुमार देवदत्त को भविष्य में अब कभी भी कुमार सिद्धार्थ से न मिलने दिया जाय। उनपर कड़ी दृष्टि रखी जाय। कुमार के मनोरञ्जनार्थ और अधिक प्रबन्ध किया जाय। उनके एकान्त को भंग करने का समुचित प्रबन्ध कर दिया जाय। एकान्त उनके जीवन से किसी भी पल भेंट न कर

सके। उसपर कड़ा पहरा रहे। ये सब प्रबन्ध आज ही हो जाने चाहिए।"

"जो आज्ञा महाराज! आज ही और अभी ही ये प्रबन्ध हो जायँगे।"

"आपकी कार्य तत्परता सराहनीय है, अमात्य!"

"लज्जित न करें देव! कुमार से मुझे भी स्नेह है। मैं स्वयं भी न जाने उनकी इस मुद्रा को भंग करने के हेतु क्या-क्या उपाय सोचा करता हूँ। कुमार की न जाने क्यों मुझे भी अधिक चिन्ता रहा करती है!"

"यह तो प्रसन्नता की बात है। देखना! कहीं कुमार को आप मुझसे छीन न लें!"

"महाराज! संतान स्नेह चाहती है। संतान ही क्या हर कोई प्राणी स्नेह का भूखा है। यह स्नेह-भोजन जिस किसी से उसे प्राप्त हो जाता है वह उसी की हो जाती है। यदि इस प्रकार कुमार मेरे हो जायँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या?"

"वे किसी के भी होकर रहें इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं, पर हाँ, वे रहें मेरी आँखों के सामने ही।"

"महाराज! जब आप मेरा साहस इतना बढ़ा रहे हैं तब मैं कुछ और भी निवेदन करने का विचार कर रहा हूँ यदि आज्ञा हो तो निवेदन करूँ।"

"अवश्य कहो अमात्य! संकोच करने का कोई कारण न होना चाहिए।"

"आपने जो इन प्रबन्धों के आयोजन की आज्ञा मुझे दी है वह मैं शिरोधार्य करता हूँ पर ये आयोजन मुझे प्रभावहीन से लगते हैं। इन आयोजनों में दास-दासियों का हाथ रहेगा पर उनमें इतना साहस कहाँ जो वे राजसी तेजके समक्ष ठहर सकें?"

"आप अपना मन्तव्य स्पष्ट शब्दों में प्रगट करें इस तरह पहेलियों में बातें न करें।"

"मन्तव्य तो स्पष्ट है महाराज! पर जब आप कह रहे हैं तो उसे और भी स्पष्ट रूप में आपके समक्ष रखता हूँ। राजसी तेज के समक्ष राजसी तेज ही ठहर सकता है और कोई नहीं।"

"तो तुम्हारा यह तात्पर्य है कि इस कार्य के लिये राज-कन्याएँ नियुक्त की जायँ?"

"नहीं महाराज! ऐसा कदापि नहीं।"

"फिर?"

"यही महाराज! कि जिस भाव-लौह को आप राग की तीव्र अग्नि में भस्म कर देना चाहते हैं वैसा हो, कदापि नहीं हो सकता।

"अब आप उस उपाय का शीघ्र कथन करिए जिसे अपना कर हमें सफलता मिल सकती है। मेरी जिज्ञासा पर अब अधिक शान न चढ़ाइए।"

"महाराज! जिस हृदय की कठोरता को संसार का कोई पाश बद्ध नहीं कर सकता है उसको कामिनी की काली अलकें एक क्षण में ही सदा के लिए बन्दी बना सकती हैं।"

"यह तो सब ठीक है पर अब उपाय बतलाइए। अधिक परीक्षा न लीजिए।"

"महाराज! इससे भी अधिक स्पष्ट और क्या कहा जा सकता है यह मेरी समझ में नहीं आता।"

"तुम्हें मेरे अधीर हृदय की वेदना का आभास नहीं, वर्ना तुम मुझे इतना नहीं सताते।"

"अरे! महाराज!! आप यह क्या कह रहे हैं, भला मैं आपको सताऊँगा! खैर! अब मैं और भी स्पष्ट कहता हूँ सुनिए! आप शुभ दिन शुधवा कर आस-पास के राज्यों की राजकुमारियों को निमन्त्रण भिजवा दीजिए·········"

महाराज ने बीच ही में बात काट कर प्रश्न किया—"किस हेतु को लेकर?"

"महाराज! उस दिन पुरस्कारोत्सव का आयोजन होगा। कुमार सिद्धार्थ इस उत्सव के निर्णायक तथा पुरस्कार वितरक होगें?"

"पर यह पुरस्कार होंगे किस प्रति योगिता के फलस्वरूप?"

"इसी में तो महाराज हमारी सफलता का रहस्य है। ये पुरस्कार सौन्दर्य प्रतियोगिता के होंगे। कुमार जिस राजकुमारी को श्रेष्ठ-सुन्दरी निरूपित करेंगे उसे श्रेष्ठ पुरस्कार से पुरस्कृत करेंगे। वही सुन्दरी उनकी जीवन-संगोनी होगी।"

महाराज के मुख-मंडल पर प्रसन्नता के भाव खेल गए। प्रसन्नता का व्यक्तीकरण करते हुए वे बोले—"अमात्य! वास्तव में उपाय सोचकर उसके अनुकूल साधन जुटाने में आपका कोई शानी नहीं है। तो अब देर किस बात की?—पुरोहित को बुलाकर मुहूर्त शुधवा लीजिए और सभी राजाओं के यहाँ निमन्त्रण भेज दीजिए। कोलीय और शाक्य जनपद की सभी सुन्दर कन्याओं के उपस्थित होने की सूचना शीघ्र ही भेज दी जानी चाहिए।"

"ऐसा ही होगा महाराज!"

"मेरा चित्त प्रसन्न हुआ। अब आप कुमार की शस्त्र-शिक्षा के विषय में कहिए उसमें क्या प्रगति है? क्या कुमार उसमें रुचिपूर्वक भाग लेते हैं?"

"जी हाँ महाराज! उस समय मेरे आश्चर्य की सीमा ही नहीं रहती है जब मैं यह देखता हूँ कि कुमार शिक्षक के बतलाए हुए सभी दाँव केवल एक ही बार में बड़ी प्रवीणता एवं दक्षता के साथ ग्रहण कर लेते हैं। शिक्षक भी मुझसे बार-बार प्रशंसात्मक शब्दों में यही कहता है कि उसे आज तक इतना कुशल शिष्य कहीं नहीं मिला।"

"ऐसा! तब तो बहुत ही सुन्दर! मैं इसके विपरीत यह सोच रहा था कि कुमार एकान्त में दर्शन विचारने के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं करते। यह सुनकर तो मुझे आपके पिछले वाक्यों का स्मरण हो आता है।"

"महाराज! आप इस प्रकार मेरी शक्ति कम न करिए। मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जिस दिन कुमार को मैं सदा-सदा के लिए प्रासाद्-कारा में बन्दी बनाने में सफल हो सकूँगा।"

"मुझे अपने अमात्य की शक्ति पर तथा बुद्धि बल पर पूर्ण विश्वास है।"

"आपकी कृपा चाहिए महाराज! अब सेवक आज्ञा का प्रार्थी है।"

"जायें अमात्य! आपने मेरे चित्तका बोझ हलका कर दिया।"

"अमात्य अभिवादन कर चले गए, इधर महाराज प्रसन्न मन कुछ सोचने लगे। उनका मानस-सागर आनन्द-वीथियों से संकुल हो गया। विश्व के कण-कण से मधुर-रागिनी सुनाई पड़ने लगी। वे उसमें खोसे गए—"धन्य है अमात्य! आज तुमने मुझे वह अमृत संदेश-दिया जिसे पानकर मेरा अंग-अंग प्रसन्नता से थिरक उठा है। तुमने मुझ मरणासन्न को संजीवन मूरि दी है। अवश्य ही इस उपाय को अपनाकर और इस प्रकार के साधनों को जुटाकर हमें सफलता मिलेगी। कुमार का परिणय-संस्कार होगा, शहनाइयाँ बजेंगी, मंत्र पढ़े जायँगें, दो हृदयों का गठबन्धन होगा। उस गाँठ में कितना रस होगा! कितनी मिठास होगी! यह अवर्णनीय होगा। उस दृश्य को लखकर महारानी प्रजापति गौतमी फूली न समाएँगी। आनन्द-विक्षिप्ता सी हो जायँगी......।"

इतना सोचते-सोचते उनको अपना विगत जीवन स्मरण हो आया। एक दिन वे भी कुमार की ही आयु के थे। खूब आखेट खेला करते थे। हिरन, शेर, चीता आदि का शिकार अनायास ही कर लेते थे। उन्हें इस बात की इतनी स्पष्ट स्मृति है कि मानों वह कल ही घटी थी। उनके परिणय के प्रथम, जो-जो तैयारियाँ हुई थीं वे सबकी सब उन्हें स्मरण हैं। वे उस समयकी एक-एक घटनाका विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकते हैं। उनकी सुहाग रात न जाने कितनी मधुर भावनाओं का विस्तार लेकर आई थी यह भी उन्हें ज्यों-का-त्यों अब भी स्पष्ट है।

वे यहीं तक सोच पाए थे कि उनकी शिथिल नाड़ियों ने उन्हें तन्द्रा लोक से स्वप्न लोक में पहुंचा दिया। स्वप्न के उस सलोने संसार में सदैव मादक ज्योत्स्ना का प्रसार रहता है। मनुष्य की अतृप्त भावनाओं में यहाँ सजीवता भर दी जाती है। यह वह लोक है जहाँ से कोई निराश नहीं लौटता। व्यक्ति जो कल्पना करता है उसको वह यहाँ मूर्तरूप में पाता है यह लोक कल्प वृक्ष की छाया से निर्मित हुआ है। इस लोक में रमना कल्प वृक्ष की छाया में विचरण करना है। महाराज शुद्धोदन भी इस लोक में विचर रहे थे। उनकी परम अभिलाषा है कि कुमार सिद्धार्थ का परिणय हो जाय। इसे देखने की असीम पिपासा उनके नेत्रों में तड़प रही है। ऐसे वरदलोक में आकर भला उनकी यह भावना कैसे अपूर्ण रह जाती? उन्होंने देखा कि:--

"उस लोक में एक ओर से एक बारात चली, जिसका प्रदर्शन राजसी था। सबसे आगे वाद्य थे जिनसे मिलन की रागिनी ने कण्ठ पाया था। उसके पीछे एक शुभ्र हस्ती पर वर बैठा हुआ था। उसका मुख मुकुट-मालाओं से आवृत् था अतः महाराज पहचानने में असमर्थ रहे। उनके पीछे हस्तियों और अश्वों की सैन्य सी सजी हुई चल रही थी। इस सैन्य के पीछे पदाति सैन्य थी। वास्तव में यह बारात थी। सुगन्धों की चहल पहल में उस लोक का वातावरण भी सुरभित हो उठा था। इसी सज्जा के साथ उनकी भी बारात गई थी। वे भी इसी अन्दाज के साथ हाथी की पीठ पर बैठे थे। उस श्री का वर्णन वास्तव में इन रंक शब्दों की शक्ति से परे की बात है। वे एकटक उस बारात की शोभा को निरखने लगे। वह बारात मन्थर गति से चलती हुई इस प्रकार प्रतीत हो रही थी मानों काम सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी रति को पाने के लिए इतनी सज्जा के मध्य जा रहा हो। वह बारात शनैः शनैः उन्हीं की ओर आती हुई प्रतीत हो रही थी। शत पगों के अन्तर से वह बारात इनके सामने से निकल गई। उसने इनके नेत्र बन्दी बना लिए थे। जिस दिशा में यह जा रही थी महाराज के नेत्र अनायास ही उस दिशा की ओर घूमते जा रहे थे। सहसा उनकी दृष्टि एक भव्य भवन की ओर उठ गई। ज्ञात होता है कि यह बारात उस भव्य प्रासाद के लिए ही जा रही है। काम की रति यहीं रहती होगी। वे उसे निरखने में इतने तन्मय हो गए

कि बारात के पहुँचने में जितना समय लगा वह उन्हें कुछ इस प्रकार ज्ञात रहा कि यह बारात अभी-अभी सजकर चली थी, अभी-अभी उनके सामने से निकल गई थी और अभी-अभी भवन के निकट पहुँच गई। वे उस भवन की ओर देखते ही रह गए। किंचित् कालोपरान्त उन्होंने देखा कि वही बारात वापस लौटी आ रही है। आश्चर्य ! महान् आश्चर्य !! सहसा उनकी दृष्टि श्वेत हस्ती की ओर उठ गई। उसपर उन्हें दो मूर्तियाँ बैठी हुईं दृष्टिगत हुईं। काम और रति। यह मधुर झाँकी दम्पति की थी। बरात आते-आते सहसा उनके पास आकर रुक गई। देखते-ही-देखते श्वेत हाथी बैठ गया। उसपर की दोनों माधुरी मूर्त्तियाँ उतर आईं। अरे ! वे तो उन्हीं की ओर बढ़ी चली आ रही थीं। इस समय वर का मुखमण्डल मालाओं से अनावृत् था। उन्होंने वर को पहि-चान लिया। अरे ! यह तो सिद्धार्थ हैं, मेरे कुमार सिद्धार्थ। ओह ! मेरे नेत्र सफल हुए। मेरा जन्म, मेरा इहलोक, मेरा परलोक सभी सफल हुए। दोनों ने उनकी चरणरज ली। वरदहस्त ने अभयदान दिया, हृदय ने शुभ कामनाएँ की और नेत्रों ने प्रसन्नता के कतिपय मोती उस अवसर पर वार दिए। उन्होंने कुमार को प्रगाढ़ आलिंगन में कस लिया। उनका मन हर्ष की कुल सीमाओं को पार कर गया। वे अतीन्द्रिय जगत् में कुछ क्षणों के लिए खो गए। एक पल बीता, दो पल बीते, तीन……चार……शनैः शनैः उनको

चेतना ने स्वप्निल माया के कुहासे को भेद डाला। उन्होंने अपने अङ्क में गौतमी को पाया। वे अति लज्जित हो उठे। स्वप्न सत्य का चोला धारण कर उनके समक्ष मूर्तरूप में उपस्थित था।

"किस मधुर स्वप्न की झाँकी को पलकों में सँजो रहे थे महाराज !"

"महारानी ! अपने कुमार सिद्धार्थ का परिणय हो चुका था। दोनों को आशिर्वाद देकर मैं कुमार को गले लगाए हुए था। इससे आगे तो तुम स्वयं ही जानती हो।"

"मैं अमात्य के चले जाने के कुछ क्षणों के उपरान्त आपके प्रकोष्ठ में आई तो आपको किसी अन्य लोक में विचरता पाया। मैं सावधानी के साथ आपके निकट आकर खड़ी हो गई थी और आपकी स्वप्न निन्द्रा के भंग होने के क्षण की प्रतीक्षा करने लगी।"

"प्रिये ! यह उद्यान वेला है। चलो उसका ही कुछ सुख लूटा जाय।"

"चलें आर्य !"

यह कहकर महाराज और महारानी निज के उद्यान का आनन्द लूटने चल दिये।



चौथा परिच्छेद

'भावना'

राजपरिवार की दास दासियों को प्रासाद के किसी भी विषय पर विचार करने का अधिकार नहीं होता था और नहीं उनमें इतना साहस होता था कि वे मुँह खोलकर कुछ कह सकें। वे केवल आज्ञा पालन ही जानती थीं। कभी-कभी कोई दास या दासी जो स्वामी के अधिक मुँहलगे होते थे। वे करुण प्रसंगों पर सहानुभूति प्रकट कर देते थे। महारानी प्रजापति गौतमी कुमार सिद्धार्थ के विषय में दिन रात चिन्तित रहा करती थीं। उनकी काया इसी चिन्तामें दुर्बल हो गई थी। उनकी इस दयनीय दशा को देख एक दिन उनकी मुँहलगी दासी ने एकान्त पाकर स्वर में सम्वेदना भर कर कहा :—

"महारानी आप दिन पर दिन घुलती जा रही हैं। आप कुमार ही की भाँति चिन्ता-सागर में डूबी रहा करती हैं। उधर

महाराज भी अपने तन को घुलाये डाल रहे हैं और इधर आप। हम लोग तो स्वामिनी का मुख देखकर जीवित रहती हैं। यदि आपकी मुख-मुद्रा पर ज़रा भी अवसाद की छाया पड़ती है तो हमारे मन भी मुरझा जाते हैं। हमसे आपकी यह दशा नहीं देखी जाती।"

"दासी! मैं किस प्रकार धीरज धारण करूँ? मन को समझा-समझाकर मैंने एक-एक दिन गिन कर आज अठारह वर्ष काट पाए हैं। इन अठारह वर्षों के अन्तर में यदि मैं एक बार भी कुमार की प्रसन्न मुद्रा देख पाती तो उस मुद्रा पर अपना जीवन न्योछावर कर देती। उनके ये दिन आमोद-प्रमोद के हैं, खेल-कूद कर बिताने के हैं, पर वे न जाने इनसे वीतराग हो क्या सोचा करते हैं! उनकी इस दशा पर विचार करते-करते कभी-कभी मेरे धैर्य का बाँध भी जवाब देने लगता है।"

"महारानी! मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि आपके यहाँ किसी बहुत बड़े महात्मा ने जन्म लिया है। राज्य के लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि कुमार सिद्धार्थ अवश्य ही कोई अवतारी हैं। ज्योतिषियों ने उनके जन्म के समय ही उनका हाथ देखा था तो उन्होंने भी यही कहा था। हम लोग भला ऐसी बातें अपने आप से कैसे जान पातीं, जब ब्राह्मण, ज्योतिषी पंडित लोग कहते हैं तभी हम लोग भी यह जान पाती हैं। उनके हाथ घुटनों के नीचे तक चले जाते हैं यह तो अवतारी होने

का ही लक्षण है। ये बातें तो बहुत बड़ी हैं महारानी! मैं रोज यहाँ जो अपनी आँखों देखा करती हूँ उसको देखकर ही मैं कह सकती हूँ कि वे जरूर कोई अवतारी हैं। सोचिए भला इतने आमोद-प्रमोद के साज होते हुए भी उनका चित्त इनमें नहीं रमता। भला यह कोई साधारण बात है? महरानी! आप यह बताने का कष्ट करिए कि कुमार दिन-रात कौन सी बात सोचा करते हैं?"

"मेरी तो समझ में कुछ आता नहीं कि वे दिन-रात क्या सोचा करते हैं! हाँ! कुमार देवदत्त के मुँह से कभी-कभी यह सुना है कि वे मृत्यु, जन्म, दुःख इन्हीं के विषय में सोचा करते हैं। इनसे मनुष्यमात्र किस प्रकार मुक्ति पा सकते हैं? यही वे सोचते रहा करते हैं। वे कभी-कभी तो यहाँ तक कहते हैं कि दुःखाग्नि में दहते इस संसार से मानवता का त्राण करने में कब समर्थ हो सकूँगा? मेरी तो समझ में नहीं आता कि वे इन पर दिन-रात क्या-क्या सोचते होंगे? क्यों री! इन दो तीन ही बातोंपर सोचने ही में वे किस प्रकार दिन-रात लगा देते हैं? मुझसे तो इनपर कुछ अधिक सोचा ही नहीं जाता। हाँ! मैं इतना ही जानती हूँ कि जब भी किसी की मौत आती है तो कोई भी व्यक्ति मृत्यु की उस घड़ी को और मृत्यु के उस पल को टाल नहीं सकता। पिछले जन्म के जैसे पाप और पुण्य जिस व्यक्ति के होंगे उन्हीं पाप पुण्य के अनुसार उसको जन्म मिलेगा। लोग कहते हैं कि जो राजघराने में जन्म ग्रहण

करता है वह पिछले जन्म के पुण्य के कारण। जितना बड़ा जो राजा होगा वह पिछले जन्म में उतना ही बड़ा महात्मा होता है।

अब रही दुःख-सुख की बात, तो यह भी पिछले जन्म में किये कर्मों के अनुसार मिलते हैं। अधिक पुण्यवाला अधिक सुख का भागी होता है और कम पुण्यवाला कम सुख का। इसके विपरीत पापों की अधिकता और न्यूनता के अनुपात के अनुसार दुःख अपनी काया प्राप्त करता है।

बस, इतनी सी बात! इनपर विचारने में कौन-सी इतनी बड़ी देर लगी? पर कुमार न जाने इनपर क्या-क्या सोचा करते हैं। हाँ! साधु महात्मा, इनकी तो बात ही दूसरी है, यह चाहें तो इनपर दो-चार घण्टे सोच सकते हैं, पर कुमार, वे तो इन साधु महात्माओं से भी अधिक आगे निकल गए। यही सोच-सोच कर कभी तो मुझे आश्चर्य होता है और कभी वेदना। यही चिन्ता दिन-रात मुझे खा रही है।"

"वैसे तो महारानी! स्त्री जाति इसपर कुछ सोच ही नहीं सकती। उसमें इतना ज्ञान ही कहाँ। हम लोग जो कुछ साधु महात्माओं से सुन लेती हैं वही जान सकती हैं, उससे अधिक नहीं। उनकी सब बातें तो याद भी नहीं रहती, जो याद रहती है, उनमें से कुछ तो समझ में ही नहीं आतीं। अपने तो इनपर इतनी देर विचार भी कर लिया, महारानी! पर मैं तो इनपर कुछ भी न सोच पाऊँगी महारानी! मुझ मूर्खा की बुद्धि में

एक बात आई, यदि आप यह न समझें कि मैं आपके निजी विषयों में कुछ बोल रही हूँ तो उसे कहने का मैं साहस भी करूँ? आप यह न समझें कि मैं आपको सीख दे रही हूँ तो·········।"

"देख! तू तो जानती ही है कि मैं दासियों में जिस नजर से तुझे देखती हूँ उस नजर से किसी और को नहीं। मैं तुझसे सच कहती हूँ कि मुझे तुझसे कुछ-कुछ स्नेह भी हो गया है। तू निस्संकोच होकर कह मैं तेरा कहा बिल्कुल बुरा न मानूँगी।

"यह तो मुझ दासी पर आपकी महान् अनुकम्पा है। कुमार आयु प्राप्त हैं महारानी! अब उनका परिणय संस्कार शीघ्र करने की सोचिए। मुझे आपकी टहल करते समय ऋषि मुनियों की बातें भी सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। ऋषि विश्वामित्र की भी बात सुनी है, वे भी स्त्री की मोहनी के वशीभूत हो गये थे। इस प्रकार वे अपना अर्जित पुण्य एवं तपोबल सभी कुछ खो बैठे थे। जिन्हें आँधी-पानी, सिंह-स्यार, क्रोध, लोभ, मोह आदि कोई भी न डिगा सके, मेनका की कनक-काया ने उन्हें पलक भाँजते ही डिगा दिया था। हम अपढ़, सेवा करने वाली तो बस केवल यही एक उपाय जानती हैं, और कुछ नहीं।"

"तेरी बात मेरी समझ में तो कुछ-कुछ आ रही है पर महाराज की भी समझ में आ जाय तब न?"

"उनको समझाना तो आपके हाथ में है। जो बात स्त्री ने समझ ली वह पुरुष की समझ में पहले ही आ जाती है। यदि पुरुष उसको साधारण रूप से नहीं समझता, तो स्त्री उसे त्रिया-चरित्र के द्वारा समझा देती है। महारानी! यही तो स्त्री के पास एक बल है वैसे तो वह अबला ही है!"

"ये तो राज-काज हैं री! मेरी ही समझ में इनका भेद नहीं आता तो तेरी समझ में कैसे आ सकता है! कब किस चीज का समय है इसे तो राजा लोग ही भलीभाँति जानते हैं, हम स्त्रियाँ राजनीति को क्या समझें! इस बात को लेकर मैं यदि त्रिया-चरित्र रचूँ भी तो कैसे?.........न जाने इसमें उन्हें क्या क्या ऊँच नीच सोचना पड़ेगा?"

"यह मैंने माना महारानी कि राजनीति में स्त्रियों को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए परन्तु यह तो आपका घरेलू मामला है। इसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं। आप महाराज का रुख देखकर चर्चा छेड़िएगा। बस! फिर सब कार्य सिद्ध ही जानिए।"

"तू इन विषयों में पूर्ण दक्षा है। कोई भी बात कहेगा तो उसके सभी पहलुओं से सम्बन्धित बातें बतला देगी। इसीलिए तो तूने सभी दासियों की मूर्धा पर स्थान पाया है।"

"दासी को अधिक बढ़ावा न दें महारानी! कहीं इस बढ़ावें में आकर मैं अपने को न भूल जाऊँ और इस प्रकार कोई त्रुटि न कर बैठूँ ऐसा मुझे भय हो रहा है।"

"अरे ! तू तो नाहक ही डर रही है। खैर ! अब अधिक मैं कुछ न कहूँगी तू निश्चिन्त हो जा।"

"दासी आपकी असीम अनुकम्पा पाकर धन्य हुई।"

"देख ! तू अपना पुरस्कार सोच रखना कि तू इस सफलता पर क्या मांगेगी ? तूझे मैं मुँह माँगा पुरस्कार दूँगी।"

"महारानी की कौन सी प्रसन्नता मुँह माँगा पुरस्कार दे रही है ?" सस्मित बदन महाराज ने महारानी के कक्ष में प्रवेश करते उनके वार्तालाप के अन्तिम भाग को सुनकर ऊपर का वाक्य महारानी के प्रति कहा। उक्त वाक्य के उत्तर को टालकर महारानी ने उनके बदन की ओर प्रेम परिपूर्ण नेत्रों से देखा। महारानी के बदन पर भी प्रसन्नता की चमक आ गई। दासी ने जब ऐसा रँग ढँग देखा तो वहाँ से वह चुपके से उठकर चली गई। महारानी ने मन में इस अवसर की अनुकूलता का अध्ययन किया। उनसे उनकी मनोदशा के अनुकूल प्रश्न करने लगीं।

"क्या यह दासी महाराज की प्रसन्नता का कारण पूँछ सकती है ?"

"वाह ! महारानी वाह !! अपनी पुरस्कार की बात को टालकर आप उल्टे मुझसे प्रश्न कर बैठीं। दाँव तो खूब रहा। खैर ! जब आपने पूँछा ही है तो मैं कहता हूँ। सुनिए ! अभी तक मैं अन्धकार में भटक रहा था पर आज आलोक किरण मिल गई। घने कुहासों का पर्दा हट गया। आज यही मेरी प्रसन्नता का कारण है देवी।"

"आप तो पहेलियों में बातें कर रहे हैं महाराज ! कुछ स्पष्ट भी कहें आर्य !"

"सिद्धार्थ कुमार की चिन्ता ने मुझ पर एक बोझ सा रख दिया था पर आज अमात्य ने वह उपाय बतलाया जिसके अपनाने से कार्य सिद्धि निश्चय है।"

"वह कौन सा उपाय है महाराज ?"

महाराज शुद्धोदन ने विस्तार से उस उपाय पर प्रकाश डाला। यह जानकर वे भी प्रसन्न हुईं और बोलीं—"ठीक ऐसे ही विषय की मैं भी चर्चा करने वाली थी। यह भी अद्भुत संयोग रहा महाराज !"

"अवश्य ही महारानी ! यह हमारे पुण्य कर्मों का विपाक है। आपने जिस मंत्र को दासी से पाया वही मंत्र मैंने अमात्य से पाया। हमें इसमें अवश्य ही सफलता मिलेगी, हृदय से कुछ ऐसी ही ध्वनि आ रही है।"

"ऐसी ही प्रतीति मुझे भी हो रही है महाराज !"

दोनों ही महाराज और महारानी, क्षण भर मंत्र-मुग्ध से बने रहे। वे बार बार उपाय की सिद्धि-शक्ति पर विचार करने लगे। उनके मन सभी बन्धनोंकी सीमाओंको अतिक्रमण कर गए।



पाँचवाँ परिच्छेद

'विचार'

सान्ध्य वेला में उपवन के मध्य कुमार टहल रहे थे। कुछ पुष्प उनको देख मुस्करा उठे थे तो कुछ के अधर सस्मित हो उठे थे। कुछ के अधर गतिमान् हो उठे थे तो कुछ के हृदय पटल खुलने लगे थे। इतना होते हुए भी वे किसी की ओर आकर्षित नहीं हो रहे थे। वे सन्ध्या-चितेरी की अनुरागिल वृत्ति की ओर ध्यान ही नहीं दे रहे थे। वे अपने में, अपने विचारों में खोए हुए थे। पार्वत्य प्रदेश की सुषमा, प्रकृति-नटी की कलाएँ, उनके लिए निस्सार थीं, व्यर्थ थीं। अस्तोन्मुख दिनकर की किरणें वाटिका-वृक्षों के शिरोभाग पर सुनहले पक्षियों की भाँति इस प्रकार विराज रहीं थीं जैसे कि वे किरण-पक्षी अभी-अभी उड़ना चाहते हों। ऐसे

आकर्षक वातावरण से घिरे कुमार संसार, मानव और मानव दुःखों पर विचार कर रहे थे। उनकी विचार बेलि मानस-धारा पर इस प्रकार फैल रही थीः—

"इस संसार में प्रत्येक प्राणी दुखी है। क्या राजा, क्या रंक, क्या माता, क्या पिता, क्या परिजन क्या पुरजन, क्या पशु क्या पक्षी सभी कोई इस दुःख की दावा में दह रहे हैं। राजा अपना राज्य-विस्तार चाहता है क्यों?.........क्या उसके पास सुख समृद्धि के साधन नहीं हैं?.......यह बात नहीं, उसकी यशोलिप्सा, उसका अरूपराग ही उसके आड़े आ गया है। यह ठगिनी, यशोलिप्सा ही उसको शान्ति पूर्वक एक स्थान पर नहीं बैठने देती। उसको भटका-भटका कर वह ठीक उसी प्रकार मार डालती है जिस प्रकार मृग को मरीचिका। यह सारा जग है ही क्या मृग मरीचिका ही तो है। इसमें वह क्यों भटक रहा है क्योंकि वह पिपासाकुलित है। उसे कौन सी पिपासा लगी हुई है?... उसके अन्दर राग की पिपासा है ऐसे राग की जिस राग की कोई रूपरेखा ही नहीं है। वह रेखा हीन है, पर है वह व्यापक प्रभाव वाला। इस राग ने ही उसके अन्दर वह प्यास जगायी जिसके कारण वह एक पल भी चैन से नहीं बैठ पाता। सभी इस संसार-मरीचिका में भटक रहे हैं। इसका अन्त क्या है?.......इसका अन्त दुःखमय है। दुःख ने संसार में किसी भी प्राणी को अछूता नहीं छोड़ा। दुःख के

न जाने कितने रूप होंगे? वह तो नाना रूप धारण कर इस संसार में विचरता है। उसके सभी रूप एक-से-एक आकर्षक हैं। उनका स्थूल रूप इतना मोहक होता है कि जिसकी मोहनी उनके पापी-प्राणों पर मोहन के बंशी-रव के रूप में छा जाती है। उसकी मादकता वह मोहमयी निद्रा है जो शत प्रयत्नों के उपरान्त भी टूटने का नाम ही नहीं लेती। पर ओ! मोह-निद्रा में सोए मानव! तुझे एक-न-एक दिन जागना होगा। मैं तुझे आकर जगाऊँगा, मै तुझे इस निद्रा से जगाऊँगा, तेरी इस निद्रा का अवसान करूँगा। तूँ इस दिन की प्रतीक्षा कर। मैं बहुत शीघ्र ही तुझे जगाने आऊँगा। मैं वह सिंहनाद करूँगा जिससे समय मानवताकी इस मोह निद्रा का सदाके लिए अवसान हो जाएगा। मैं जागरण का सजीव प्रहर बनकर इस संसार पर छा जाऊँगा······" कुमार इतना सोचते-सोचते वहीं रुक जाते हैं। वे उक्त समस्या का उत्तर पाने के लिए अपने विचार-सागर की अनन्त गहराइयों में गोते लगाते हैं। एक स्थान पर खड़े खड़े आकाशोन्मुख दृष्टि किए उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया पर उनकी समस्या को उत्तर अप्राप्य रहा। वे अपने पर झुँझला उठे। विचार-धारा को जहाँ से बाँध लगा दिया था वहीं से पुनः खोल दियाः—

"यदि मैं दुःख को समस्या का उत्तर नहीं पा सकता तो दुःख के हेतु को नहीं जान सकता। दुःख का हेतु न जानने से मैं उसका निरोध भी पाने में असमर्थ रहूँगा। इसको जाने

बिना मैं संसार के प्राणियों को मुक्ति का मार्ग भी न बता सकूँगा। ओह! मेरा ज्ञान कितना सीमित है और मेरी बुद्धि भी, वह आगे सोचने का नाम ही नहीं लेती। मैं अपनी विवशता पर क्या करूँ? संसार के प्राणियों का उद्धार किस प्रकार सम्भव होगा? धिक् है मेरे जन्म को जो परोपकार की बात भी नहीं सोच सकता! मनुष्य इस संसार में क्यों आता है इसका किसी को भान नहीं? यहाँ आते-ही-आते वह सब कुछ भूल जाता है। वह अपने कर्त्तव्य का त्याग कर अकाण्ड-ताण्डव में निरत हो जाता है। वह इस अकाण्ड-ताण्डव में क्यों निरत हो जाता है?···कदाचित् आसक्ति के कारण! यह आसक्ति क्या वस्तु है?···क्या इस आसक्ति ही ने संसार सृष्टि नहीं की?···तो मनुष्य को इससे क्योंकर छुटकारा मिल सकता है?···यह आसक्ति ही नाना स्वाँग रच, नाना वेष धर मनुष्य को भुलाए रखती है। उसको प्रवञ्चित करती है। क्या स्त्री आसक्ति है? क्या पुत्र, पुरजन, परिजन, सम्बन्धी, क्या ये सब आसक्ति ही के रूपान्तर हैं? क्या मनुष्य इससे मुक्त नहीं हो सकता?······पर वह आसक्त हुए बिना रह भी कैसे सकता है? यह तो उसकी स्वाभाविक दुर्बलता है। अपनी स्वाभाविक दुर्बलता को ही कम करने वह यहाँ आया है। यह दुर्बलता उससे किस प्रकार दूर हो?··· यही तो समस्या है। ठीक मनुष्य तृष्णा ही के कारण फल, कुफल पर ध्यान दिए बगैर उस ओर दौड़ लगा रहा है इसीसे वह दुःख उठा रहा है। संकटों के घोर कान्तार में वह

मार्ग भ्रष्ट हो दुःख पा रहा है। पर यह तृष्णा मनुष्य में जन्म ही क्यों लेती है? ··क्या आसक्ति के आकर्षक रूप के कारण?······आसक्ति का आकर्षक रूप ही तो राग को जन्म देता है। इस राग को भी तो हम आकर्षक रूप युक्त कह सकते हैं। इस राग ने कहाँ से जन्म ग्रहण किया?··· इसने चक्षुरिन्द्रिय की सहायता से अपना आस्तित्त्व पाया। पर यह तो मनुष्य की दुर्बलता है, वह अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए चक्षुओं पर दोषारोपण करता है। वह उसको देखने पर आकर्षित ही क्यों हुआ?······अविद्या के कारण। तो क्या इस अविद्या ही को निरस्तित्त्व करना चाहिए, मनुष्य को विद्या-प्रकाश हो सुमार्ग पर लगा सकता है। उसे मुक्ति-मार्ग दरशा सकता है। 'सा विद्या या विमुक्तये।' वही विद्या है जो मुक्ति दिलाए। मुक्ति क्या वस्तु है?·····दुःखों का अन्त मुक्ति है। इन्द्रियों सहित मन पर पूर्णरूपेण संयम ही मुक्ति है। क्या जन्म-मरण से दुःख नहीं होता? मनुष्य, क्या इस जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा नहीं पा सकता?···इससे छुटकारा पाना ही तो मुक्ति है। यह जन्म-मरण (आवागमन) क्यों लगा करता है? क्या कर्म इसके उत्तरदायी नहीं हैं? क्या वे उसे भिन्न योनियों में नहीं भटकाते? क्या मनुष्य जप, तप, पूजा आदि में ही मुक्ति खोजता है? अवश्य ही मोक्ष, मनुष्य के जीवन का परम लक्ष्य है। आत्मज्ञान को ही मुक्ति कहते हैं। मनुष्य के अन्दर स्थित आत्मा ही शाश्वत

तत्त्व है। वे भले ही इसे शाश्वत कहें पर मुझे तो इसमें कहीं भी शाश्वत तत्त्व दृष्टिगत नहीं होता! यहाँ की प्रति वस्तु क्षणभंगुरता का पाठ पढ़ाती है। वे कहते हैं कि इस आत्मा को माया के घेरे से बाहर निकाल लेना ही मुक्ति है। क्या वास्तव में किसी ने आत्मा को लख पाया है? क्या आत्मा नाम की वास्तव में कोई वस्तु है? क्या उसके पाने का निर्देष करना मानव को पथभ्रष्ट करना नहीं? आत्मा शरीर के किस अंग विशेष में निवास करता है?……इस शरीर में एक अन्तःकरण है, इसकी चार पृथक्-पृथक् वृत्तियाँ हैं जो मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के नाम से जानी जाती हैं। मन की अध्यक्षता में दस इन्द्रियाँ हैं जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय हैं। क्या यह मन ही आत्मा कहलाता है?…पर मन तो उत्पन्न होता है?…फिर मन शाश्वत तत्त्व कैसे हो सकता है।…मन अन्नमय है। अन्न का अन्तिम सत्त्व मन की सृष्टि करता है। यह तो आत्मा कदापि नहीं हो सकता। तो आत्मा क्या वस्तु है? शरीर में गति किसने उपन्न की?…प्राणवायु ने। क्या यह प्राणवायु आत्मा हो सकता है?…किसी ने भी आतमा के रूप को नहीं देखा। किसी ने भी उसका यथातथ्य वर्णन नहीं किया। आत्मा कितना ही सूक्ष्म तत्त्व क्यों न होता पर उसका वर्णन अवश्य ही होता। उसको पानेवाला, उसको लखनेवाला अवश्य ही आतमा के तत्त्व को स्वीकारता। 'आतमा अनुभव की

वस्तु है तर्क की नहीं, यह तर्क तो उन्होंने अपनी दुर्बलता की रक्षा करने के लिए दिया है। इसी प्रकार के अन्य तर्क भी हैं जैसे 'गूँगे का गुड़।' आत्मा और परमात्मा के चक्कर में फँसकर मनुष्य की बुद्धि चकरा जाती है। वह न जाने क्यों इस परोक्ष ज्ञान के पीछे पड़ा हुआ है। वह संसार के दुःख और दुःख के हेतुओं पर क्यों नहीं विचार करता ? इस बन्धन से निस्तार की बात वह क्यों नहीं सोचता······?''

कुमार इतना ही सोच पाए थे कि सहसा भान हुआ कि उनके बदन को कोई उत्तरीय से बड़ी सावधानी से ढँक रहा है। चौंककर जब उन्होंने देखा तो उन्होंने अपनी स्नेहमयी माँ को पाया। दासियाँ इस कार्य के लिए नियुक्त थीं पर उनमें इतना साहस कहाँ ! वे तो स्वामी का रुख देख कर टहल कार्य करती हैं। यद्यपि वे उनके ओढ़ने के लिए उत्तरीय वस्त्र लिए खड़ी थीं तथापि वे उनके विचारों में विघ्न बन कर आने का साहस नहीं कर सकती थीं। मातृ-हृदय ने जब कुमार को प्रासाद में न पाया तो वह उद्यान में उन्हें देखने के हेतु चली आई थीं। उन्होंने देखा संन्ध्या भीग रही थी अतः दासी के हाथ से उत्तरीय लेकर कुमार के बदन को बड़े स्नेह से तथा बड़ी सावधानी के साथ ढँकने लगी। कुमार माता को देखकर लज्जित हो गए। लज्जित होते हुए ही उन्होंने माता को प्रणाम किया। उन्होंने उनपर आशीर्वाद की बौछार कर दी। उलाहने के रूप में वे कहने लगीं—"बेटा ! तुम्हें तो

अपने तन बदन का होश ही नहीं रहता, न जाने तुम किस संसार में भटकते रहते हो ? कभी तो इस अभागिनी माँ को अपनी प्रसन्न-मुद्रा दिखा दिया करो जिससे कि मैं भी माता होने की सार्थकता प्राप्त कर लिया करूँ।"

"माँ ? मुझे लज्जित न करो। मैं वास्तव में बहुत अभागा हूँ जो स्नेह की सरल मूर्त्ति अपनी माँ को भी प्रसन्न नहीं रख सकता। माँ! यह विचार कभी-कभी मेरे दुःख का कारण हो जाया करता है।"

"पुत्र ! यह तुम क्या कह रहे हो। तुम्हें किसी प्रकार दुःखित होने की आवश्यकता नहीं। मैंने तो यह कहना चाहा था कि इस समय यहाँ ओस पड़ रही है। अँधेरा भी हो चला है। सर्दी लग जाने का भय है। अतिकाल को बचाना चाहिए।"

"अब कितना भी बहाना क्यों न करो माँ ! पर वास्तविकता कृत्रिम आवरण को एक क्षण भी धारण नहीं कर सकती।"

"क्या यह तुमसे छिपा है कि संतान के सुख में माता-पिता का सुख और संतान के दुःख में माता-पिता का दुःख निहित है ?"

"माँ ! मैं अपनी त्रुटि पर लज्जित हूँ।"

"तुम नित्य ही ऐसा कह दिया करते हो पर नित्य भूल भी जाते हो। क्या तुम्हें कभी मेरा भी स्मरण होता है ?"

माँ ! आपका स्मरण तो आता है पर दूसरे ही क्षण बात विस्मृत हो जाती है।"

"हाँ ! मुझे सब मालूम है। तुम संसार के प्राणियों ही के विषय में दिन रात सोचा करते हो। उनके दुःखों का विषय ही तुम्हारे विचारों का केन्द्र है।"

"हाँ ! माँ !! संसार का प्रत्येक प्राणी दुःखी है। आप मेरे कारण दुःखी हैं, महाराज भी मेरे ही कारण दुःखी हैं। ऐसा क्यों ? क्या यह आपका मुझमें मोह नहीं है ?······ यही मोह किसी वस्तु को हमारे लिए प्रिय बना देता है जिसका वियोग दुःख को अस्तित्त्व में ला देता है। इसके विपरीत यह मोह की भगिनी घृणा अपना कार्य करती है जो अप्रिय से सँयोग करा देती है तो हमें दुःख होता है। मुझे जो दुःख हुआ वह भी तो मोह ही के कारण हुआ।"

"बेटा ! यही तो इस संसार में है जिसके सहारे प्रत्येक प्राणी जीवित है। यदि यह आधार ही समाप्त हो जाय तो संसार ही न चले। माँ बच्चे को जन्म देने के उपरान्त उसे कहीं भी असहाय छोड़ दे। किसी का किसी से कोई लगाव ही न रहे, सम्बन्ध ही न रहे। कोई किसी की रक्षा ही न करे, कोई किसी को पहिचाने तक नहीं। इस प्रकार तुम सोचो कि यदि मोह न हो तो सम्पूर्ण संसार के प्राणियों में अव्यवस्था फैल जाय।"

"माँ ! पर आपने तो मोह का एक ही पहलू देखा है दूसरा नहीं। हमें किसी भी अच्छाई या बुराई की माप उसका अन्तिम

फल देखने के उपरान्त ही करनी चाहिए। जिसका अन्तिम फल सुख है वह वस्तु अच्छी है और जिसका अन्तिम फल दुःख है वह बुरी है। मोह का अन्तिम फल दुःख है अतः हम उसे अच्छा नहीं कह सकते। मोह स्वप्नमयी निद्रा है। इससे सुख की आशा माया है, छलना है!

"तुमसे कौन जीतेगा इन बातों में। मैं तो यह कहती हूँ कि संसार में एक प्राणी तो है नहीं जिसका दुःख निवारण किया जाय?"

"इसीलिए तो माँ! यह चिन्ता का विषय है। यह प्रश्न सम्पूर्ण संसार का है एक प्राणी का प्रश्न तो स्वार्थमय भी हो सकता है पर अनेक का प्रश्न स्वार्थमय कदापि नहीं हो सकता।"

"स्वार्थ पर तो संसार ही टिका है बेटा। बिना स्वार्थ के कौन किसे पूँछता है? कौन किसे पहिचानता है?......"

"माँ! यहीं पर तो आपके और मेरे विचारों में अन्तर है। इस स्वार्थ का अन्त भी तो दुःखमय है फिर भी इस में कल्याण की भावना करना तो अनुचित है माँ? इस दुःख को मैं दुख नहीं कहता। जन्म मरण का दुःख ही सबसे बड़ा दुःख है। उसी का निवारण करना मनुष्य जीवन का परम ध्येय होना चाहिए।"

"बेटा! तुम्हें ये सब बातें सोचकर क्या करना है? जिनका कार्य यह सोचना है वे इन पर सोच रहे हैं। तुम्हें

यहाँ कौन सा दुःख है जो तुम ऐसी बातें सोचा करते हो ?"

"माँ ! वह जीवन, जीवन ही क्या जो परहित में न लगे। मैं बहुत यत्न करता हूँ पर इन विषयों पर सोचने के लिए विवश हो उठता हूँ। मैं इधर से अपना ध्यान हटा ही नहीं पाता हूँ। महाराज मुझे संसार की वास्तविकता से वंचित रखना चाहते हैं। उस संसार की अवसादमयी छाया भी मुझ पर नहीं पड़ने देना चाहते हैं। मुझे आमोद-प्रमोदों के कठघरे में इस प्रकार जकड़ दिया है कि मैं दूसरे संसार की बात भी न सोच पाऊँ। मेरे चारों ओर महाराज क्यों इस झूठे संसार की रचना कर रहे हैं ? वे क्यों चाहते हैं कि मैं इस जग-जीवन के दुःखमय नाटक को न देख सकूँ और न ही उस पर कुछ सोच सकूँ ? माँ ! महाराज ऐसा क्यों कर रहे हैं ? कुछ तो कहें माँ ! कुछ तो बोलें........माँ......?"

महारानी प्रजापति गौतमी ने कुमार के किसी भी प्रश्न का उत्तर न दिया मन की वेदना मन ही में रखी। इसी में उन्हें अपनी तथा अन्य की भलाई जान पड़ी। उनका हृदय खिन्न हो गया था। उन्होंने कुमार को चुपचाप वहाँ से उठाया और उन्हें उनके प्रकोष्ठ में पहुँचा दिया। महारानी ने रात को भोजन किया अवश्य पर उसमें उन्हें कुछ भी स्वाद न मिला।

छटा परिच्छेद

उत्सव (१)

महाराज शुद्धोदन की उत्सव की अभिलाषा को जान वैभव और यश दोनों शहोदर, घूमते-घामते कपिलवस्तु में पधारे। कहने को तो दोनों सहोदर हैं पर इनमें बनती एक पल भी नहीं। इतना होते हुए भी रहते दोनों एक ही साथ। कभी पहला दूसरे का अनुसरण करता है तो कभी दूसरा पहले का। इस प्रकार इनका साथ किसी भी क्षण छूटता नहीं। कपिलवस्तु नगरी पर एक सरसरी दृष्टि डालते हुए वैभव ने इस प्रकार वार्तालाप प्रारम्भ किया—"आज शाक्य महाराज के यहाँ इस राज्य के अतिरिक्त पड़ोसी राज्यों की श्रेष्ठ सुन्दरियाँ पधार रही हैं। ऐसे शुभ अवसर पर महाराज शुद्धोदन ने हमको सहायतार्थ बुला भेजा है। हमें उनकी भरपूर सहायता

करनी चाहिए। सम्पूर्ण कपिलवस्तु तथा उसके तन, मन और प्राणों पर मैं छा जाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि उनके नाना रूपों के मिस मैं मुस्करा उठूँ।"

यश को अपने भाई की इस गर्वोक्ति पर ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वह उसके इस प्रभाव को कम करने का मन में भाव भर यह बोला —"पर, महाराज में जितनी मेरी व्याप्ति है उस व्याप्ति की सर्वांग अभिव्यक्ति तुम मूर्त होकर भी नहीं कर सकते। ऐसा करना तुम्हारे लिए नितान्त दुष्कर है। तुम उनके सम्पूर्ण यश के एक लघु संस्करण मात्र ही तो हो। तुम्हारी सीमा कपिलवस्तु की चहार दीवारियों में बन्द है, पर मेरी तो कोई निश्चित सीमा ही नहीं। आज यहाँ है तो कल वहाँ, इस प्रकार उसका विस्तार अनन्त की परिधि में अनन्त से भी आगे तक होता चलता है। तुम्हें तो यह बात भली-भाँति विदित है कि महाराज शुद्धोदन का यश न केवल मर्त्यलोक ही में परिव्याप्त है वरन् स्वर्गलोकमें भी छाया हुआ है।

इस उत्तर को सुनकर वैभव तिलमिला उठा। फिर भी वह अपने को रोकता हुआ बोला—"पर तुम्हारा आधार तो मैं ही हूँ। जिसका जैसा वैभव उसका उसी अनुपात से यश! जब आगन्तुक गण यहाँ पधारेंगे तो वे मुझे देखकर ही महाराज के यश की माप करेंगे। मैं चाहूँ तो पतझड़ भी बसंत श्री से झूम उठे, मरुस्थल में भी मैं गरिमा बन उसके कण-कण पर बरस पड़ूँ।"

"कितना भी कहो, पर तुम्हें देख कर लोग यही कहेंगे कि मेरी परिव्याप्ति तो इससे भी कहीं अधिक है। तुम मेरे परिपार्श्व के समान हो।"

"आज मैं अपनी कलाओं का चमत्कार दिखलाऊँगा। कपिलवस्तु को इस प्रकार सजा दूँगा जिससे लोग यह भी भूल जायँ कि वे स्वर्ग लोक में हैं या मर्त्यलोक में। मैं अपने समक्ष दर्शकों के चित्त पर तुम्हारा नाम भी न चढ़ने दूँगा।"

"तुम हो तो रूपवान्, पर तुम्हारा मूल्य है वही जो मूल्य एक वेश्या का उत्सव के लिए होता है, जिसको कुछ स्वर्ण मुद्राएँ क्रय कर लेती हैं। तुम्हें भी कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ क्रय कर लेती हैं। अतनु होते हुए भी महाराज ने मुझे ही पाने के लिए तुम्हारी सेवाओं का स्मरण किया है।"

"तुम किसी भी रूप में उपस्थित होने की क्षमता ही नहीं रखते। तुम्हारे अस्तित्त्व का निदान कौन है, इस पर भी क्या तुमने कभी विचार किया?"

"तुम्हें प्रत्येक नयनरंजन के लिए बुलाता है, पर मुझे! मुझे पाने के लिए हर एक या तो तुम्हारा आश्रय लेता है या फिर अपनी शक्ति का। इसके अतिरिक्त वह धर्म कर्म का भी आश्रय लेता है। तुम तो मेरी प्राप्ति के अनेक साधनों में से एक साधन हो। तुम्हें अपने को स्वयं ही पहचान लेना चाहिए।"

"देखता हूँ कि तुम्हारी यह गर्वोक्ति किस प्रकार फलित होती है ?" क्रोधावेश में आकार वैभव ने यश की भर्त्सना की।"

"क्रोध पाप का मूल है, अतः तुम्हें कभी क्रोध नहीं करना चाहिए। प्रत्येक को कहने से पूर्व सोच लेना चाहिए कि वह अपनी क्षमता से बाहर तो नहीं जारहा है। यदि तुम्हें अपनी कला और अपने रूप का इतना ही गर्व है तो अपनी आकर्षक कलाओं से तुम सिद्धार्थ को आज तक क्यों लुभाने में समर्थ न हो सके ? वे हर पल तुम्हीं से सेवित रहे पर···। उस समय तुम्हारा यह शिल्प, तुम्हारी ये कलाएँ कहाँ सो जाया करती थीं ? तुम्हारा यह आकर्षक रूप कहाँ अपनी आकर्षण-क्षमता खो बैठता है ?"

"तुम्हें किसी की इस प्रकार भर्त्सना नहीं करनी चाहिए। यह तो स्वयं समय ही बतलाएगा कि मेरी कलाओं में आकर्षण है या नहीं, मेरी योजना का कोई शिकार होता है या नहीं। समय की प्रबलता के कारण ही राम के बाणों में हिरण को बिद्ध करने की शक्ति नहीं रही थी। वह समय की प्रबलता ही थी जो राम को भीलनी के बेर खाने पड़े थे। अतः मैं भी स्वयं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर न देकर इसका भार समय पर छोड़ता हूँ।"

"अच्छा ! मैं भी उसकी प्रतीक्षा में रहूँगा।" इतना कहकर दोनों ने अपना-अपना मार्ग लिया। वैभव ने कपिलवस्तु पर एक विहंगम दृष्टि डालकर अपना कार्य आरम्भ कर दिया।

कपिलवस्तु का प्रत्येक द्वार तो रण और स्वर्ण कलशों से शोभायमान था। हरएक घर स्वच्छ एवं धवल रूप लेकर उपस्थित थे। गली-गली सुरभि समीर में डूबी हुई थी। नगरी का कण-कण विहँस रहा था। मदन इस नगरी में प्रहरी बनकर घूम रहा था। रति की पायलों की झंकार प्रत्येक प्राणी के श्रुतिपुटों में मधु उँडेल रही थी। इत्र और सुगन्धित तैल में लोग नहाए हुए से थे। शाक्य राज्य तथा पड़ोसी राज्यों की सुन्दरी राजकुमारियाँ सिद्धार्थ के प्रासाद में उपस्थित थीं। ये भाँति-भाँति के वस्त्राभूषणों से अपने अंगों को सजाए हुए थीं। उनके उन्नत उरोज इस प्रकार शोभा दे रहे थे, मानो साक्षात् मन्मथ ने अपना वितान ताना हो। उनकी अलकें मुखचन्द्र की ओर इस प्रकार बढ़ रही थीं मानों भ्रमण पंक्ति मयंक के अमृतकुण्ड की ओर अमृत-पान के हेतु अग्रसर हो रही हो। किसी-किसी अल्हड़ किसोरी की चोटी उरोजों के मध्य इस प्रकार शोभायमान थी मानों दो कंज-कलिकाओं के मध्य से भटकी हुई नागिन जा रही हो। किसी-किसी की चोटी एक उरोज पर इस प्रकार शोभा दे रही थी मानों कोई निद्राभिभूत सर्पिणी जलज पुष्प पर सावधानी से फणि रखे सो रही हो। सुन्दरियों की मण्डली इस प्रकार शोभा दे रही थी मानों रति ने बसन्त सेना के साथ मर्त्यलोक में पदार्पण किया हो, उसी के आदेश से यौवन की यह फुलवारी यहाँ उतर कर आई हो। यह यौवन फुलवारी कुमार की

फुलवारी से प्रतिद्वन्द्विता कर रही थी। महाराज शुद्धोदन का प्रासाद अपनी सर्वोत्तम कलाओं से आमूल सज्जित था।

महाराज! एक को जीतने के हेतु इतने साज! यह तो संस्कारों और संसार की आकर्षक शक्तियों की होड़ है। एक संन्यासी के प्राणों पर इतने निर्मम प्रहार की भूमिका, निर्वेद को समूल उखाड़ फेंकने के हेतु ऐसी साधना! यह कैसा उपहास, यह कैसी प्रवंचना! सोच मानव! तू क्या करने जा रहा है?'''क्यों तू उसे पथभ्रष्ट करने जा रहा है? तू क्यों अपयश कमाने की सज्जा प्रस्तुत कर रहा है? क्या इसमें तेरा स्वार्थ नहीं?'''छिः! तू स्वार्थ के हेतु यह प्रचण्ड पाप लेने जा रहा है, इस निन्द्य कर्म में निरत है। क्या तूने कभी यह सोचा कि संसार के प्राणी दुःख क्यों भोग रहे हैं कि तू एक ऐसे जीव पर माया का वितान तानने जा रहा है जो समग्र विश्व के प्राणीमात्र की सेवा करेगा। उसको दुःख की दहकती वह्नि से बचाएगा! यह तो पाप है घोर पाप!

महाराज अतिथियों का सत्कार करने में निरत थे। कुमारियाँ यथेष्ठ सत्कार के हेतु रनिवास में भेज दी गईं थीं। सुन्दर-सुन्दर यानों पर सभी राजागण इन्द्रपुरी सी कपिलवस्तु नगरी में पधारे थे। सुषमा विनिमज्जित उस कपिलवस्तु को देखकर कोई राजा हर्ष से फूला नहीं समाता था तो कोई ईर्ष्या की अग्नि में जलने लगता था। कोई दाँतों तले ऊँगली दबाता था तो कोई आश्चर्य विस्फारित नेत्र रह

जाता था। उस समय कपिलवस्तु इस प्रकार शोभायमान था मानों आनन्द-ऋतु सशरीर उस नगरी में पधारी हो और आज उसने अपने महोत्सव के हेतु मानों इस नगरी को चुना हो। इसलिए ही उसने इसमें यह सौन्दर्य सरिता बहाई हो।

कुमार सिद्धार्थ, देवदत्त तथा उसके अन्तरङ्ग सखा उत्सव में उपस्थित रहेंगे। नवागन्तुकाएँ राजकुमारियाँ तथा कपिल-वस्तु राज्य की राजकुमारियाँ इस उत्सव में पुरस्कृत की जानेवाली हैं। महाराज! अमात्य तथा अन्य आगन्तुक राजागण उत्सव की गतिविधि निरीक्षण हेतु बाहर के प्रकोष्ठ में ऐसे स्थान पर रहेंगे जहाँ से उत्सव का सारा कार्य-क्रम देख सकें। उत्सव के पूर्व ही दासियाँ सभी के यथोचित्त आसन लगा गईं। अन्य परिचारिकाएँ प्रत्येक राजकुमारी की सेवा के लिए नियुक्त कर दी गईं। महाराज ने आज संसार से वैराग्य की सत्ता निर्मूल कर लेने की ठान ठानी है।

उत्सव का समय हो गया। सभी राजकुमारियाँ अपने-अपने आसनों पर आ गईं। उत्सव की सम्पूर्ण रीति को अमात्य ने सिद्धार्थ के प्रति स्पष्ट कर दिया था। कुमार अपने भ्राता देवदत्त तथा सखाओं के साथ आसनासीन हुए। सभी ने अपने-अपने स्थानों से उठकर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। कुमार को देखकर किसी सुन्दरी के बदन पर उपेक्षा के भाव झलक आए तो किसी के बदन से श्रद्धा

टपकी। किसी का आनन उनको बिना देखे ही लज्जा से लजमरा तो किसी के नेत्र स्वतः ही नीचे हो गए। कोई कुमार को देखकर उनके विषय में अपने विचार व्यक्त करने के लिए पार्श्व में बैठी सहेली की ओर बढ़ी तो कोई उनके बदन की ओर एकटक देखती की देखती ही रह गई। यशोधरा के नेत्रों ने ज्योंही दर्शनलाभ पाया त्योंहीं उनकी माधुरी मूर्त्ति उसके नेत्रों में झूलने लगी। उनको देखते ही उसके हृदय की धड़-कन बढ़ गई, जिसने अपनी रसनाहीन मधुर भाषा में कुछ अमृतमयी सूचना दी। तन में पुलकन हुई, मन आनन्द से थिरकने लगा। आनन्द, संगीत की कड़ी बन रग-रग और प्राणों पर छाने लगा। वह आनन्द-विभोर थी। मन-ही-मन उसने अपने देवता का चुनाव कर लिया और वह उनकी अर्चना के गीत भी सँजोने लगी। नाड़ियों ने रास रचाया। भावमयी कविता की आरती सजी। नयनों की ज्योति जली। प्रियतम की प्रीति पली। हृदय की प्यास जगी।

उत्सव का कार्य-क्रम प्रारम्भ हुआ। काम की सभा में वैराग्य विराजमान था। उसको मिटाने का कौन दुस्साहस करे, उसे डिगाने और उसे पथभ्रष्ट करने का। प्रथम सुन्दरी कुमार के निकट नत नयन किए, लज्जा के लाल डोरों में जकड़ी हुई आई। आने में गाम्भीर्य और पैरों में धीरज था। जाने में चाञ्चल्य और पैरों में अधीरता पगी थी। द्वितीय सुन्दरी मन के भावों को, अङ्गों के हावों से उनको व्यक्त करती

हुई उन्हें डिगाने का विफल प्रयत्न-सा करती हुई आई और अपना-सा मुँह लेकर हार खाकर चली गई।

कहाँ निर्वेद का अथाह पारावार और कहाँ हाव-भावों की हलकी सी वायु, भला किस प्रकार उसमें विकार ला सकती थी! इस प्रकार सुन्दरियों की पंक्ति कविता की कोमलतम भाव-वल्लरी सी उनके सामने आई और मधुर स्वप्न की भाँति जागरण में खो गई। उनके मन में उस गीत का एक अक्षर तक न समाया, उस रागिनी का एक स्वर भी न भाया। उनके कर्ण बधिर थे क्योंकि उन्होंने आज तक मानव का करुणक्रन्दन और दुखियों की आहें सुनी थीं। उन्हें अन्य कुछ सुनने का अवकाश ही कहाँ? यशोधरा ही पुरस्कृत होने को रह गई थी। उसके हृदय ने अधीरता का राग धड़कनों के तारों पर छेड़ा। उसके आसन से उठते ही भाव मचल उठे। कोकिला ने मधुर कण्ठ खोला। गीतों की सृष्टि मचल कर उसके पैरों से शिशु सी लिपट-लिपट कर इस प्रकार चलने लगी मानों आदि रचना भाव-माधुर्य के हेतु उससे याचना कर रही हो। कामना ने बाँसुरी पर राग छेड़ा। वासना भीनी गन्ध के मिस कुमार के नासापुटों में प्रवेश कर गई। उसने हृदय की कोमलतम शय्या पर अपना आसन जमाया। विराग रागमय हो उठा। भाव भ्रमरों ने प्राण वंशी बजाई। निर्वेद का मरुस्थल हरीतिमा की गहराइयों में डूब गया। रति ने यशोधरा की रूप-धारा को सम्हाला। काम,

कुमार की हृदय-कविता में समा गया। धरती डोल उठी। विश्ववीन बज उठी। क्यों न हो, उसको बजानेवाला जो आ गया। सागर में विक्षेप आया। लहरें उठीं और उठकर कूल से मिलने चल दीं। यशोधराके रूपमें रति समक्ष खड़ी थी। कुमार के खंजन सौन्दर्य-वारि पान करने में निरत थे। प्राण से प्राण का, मन-से-मन का रागिनी का राग से, स्वर का ताल से, कविता का भाव से और तृषा का सुरसरि से मिलन था। सृष्टि मधुर कण्ठ से बोल उठी—"और मेरा पुरस्कार।"

वे इस अनाशित प्रश्न को सुनकर एकदम चौंक पड़े। दृष्टि फेंको तो पुरस्कार समाप्त पाए। वे घबरा कर उनको इधर-उधर खोजने लगे। सहसा उनका हाथ कण्ठ के मणिहार पर गया। उनका हाथ हार उतारने को उद्यत हुआ तो यशोधरा ने नकारात्मक भाषा सुनायी। वह बोल उठी—"मैं आपके हृदय हार को कैसे स्वीकार करने का दुस्साहस करूँ? यदि देना है तो हृदय ही दो।"

ऐसा कह वह निर्निमेष निहारती हुई मन्द-मन्द मुस्कराने लगी।

देवदत्त बोल उठे—"हार क्यों भाई हृदय निधि प्यार क्यों न दो, विनिमय में उनका स्वीकार लो।

कुमार विचलित हो गए। व्यग्र भाव उनके मुख पर मूक भाषा बनकर छा गया। उन्होंने झटपट हृदय हार उतार कर गोपा की ओर बढ़ा दिया। उनके नेत्र उसकी ओर उठे। नेत्रों

की भाषा में कुमार ने कहा—"हार मिस हृदय लो सुन्दरी।"

हृदय भावनाओं को व्यक्त करने के बहुत से साधन हैं। प्रेम के क्षेत्र में हृदय, हृदय की नेत्र, नेत्र की मौन भाषा के मुखरित रूप को समझने में एक निमेष भी न लगाते थे। गोपा के नेत्र कुमार के नेत्रों से मिले। नेत्रों ने परस्पर भाषा समझी। रंकिनी को राशि प्राप्त हुई, शबरी को राम और राधा को श्याम। झटपट उसने हार लेकर चाहा कि उसे हृदय से लगा लें, पर वह ऐसा न कर सकी। उसके वातावरण ने ऐसा करने से उसे रोक दिया। मर्यादा भी तो अपना महत्त्व रखती है। उसने मनमें इसी भाव को लेकर उसे समझाया—"अयमन! तू इतना अधीर क्यों होता है? माना कि तुझे तेरा सर्वस्व मिल गया, पर यहाँ तुझे मर्यादा का निर्वाह भी तो करना है। यदि मर्यादा गई तो शेष कुछ न रहेगा।"

वह उन्मादिनी सी अपने को सम्हालती मन्थर गति से, पायलों से गीत झरती, गीत मिस धरती पर मधु-धार ढरती, चल रही थी। उसकी इस अवश दशा को लख परिचारिकाओं ने उसे यथा स्थान पहुँचने में सहायता दी।

महाराज शुद्धोदन, अमात्य तथा अन्य आमन्त्रित राजाओं की प्रसन्नता फुसफुसाहट मिस बह निकली। अन्य राजकुमारियाँ हतप्रभ हो गईं। कुछ उसे ईर्ष्या भरी दृष्टि से देखने लगीं तो कुछ श्रद्धा भरी...। आखिर अमात्य का उपाय काम कर ही गया। यह था अमोघ-अस्त्र जिसका वार कभी खाली गया ही

नहीं। महाराज की सारी दुश्चिन्ताएँ काम के एक ही झोंके में इस प्रकार बह गईं, जैसे भीषण झंझा में तृण। हर्ष की परियाँ स्वप्नों की बारात सजा लाईं। प्राणों के साज पर शहनाई बज उठी। प्रणय-वेदिका पर प्रेम मंत्र उचारे गए। दो हृदयों का संयोग पर्व समारोहपूर्वक मनाया गया। काम और रति ने दम्पति का स्वागत् किया। पर्व समाप्त हुआ। दम्पति ने आवास हेतु स्वप्न प्रासादों की रचना प्रारम्भ कर दी। भाव-पादप रति-मंजरियों से लद उठे।

उत्सव (२)

महाराज ने दूसरे दिन भी अतिथियों को रोक लिया। यात्रा-श्रम के परिहार हेतु उन्हें महाराज ने साग्रह रोक लिया था। दूसरे दिन भी आमोद कम न रहा। महाराज आगन्तुक राजा और अमात्यों को सुन्दर से यानों पर बैठाकर राज्य के प्राकृतिक वैभव को दिखलाने के हेतु ले गए। इधर देवदत्त ने भी कुमार सिद्धार्थ को उद्यान के लिए प्रस्तुत किया। आज्ञा हुई कि उद्यान के मार्ग पर कोई वृद्ध, रोगी, संन्यासी आदि न रहने पाए। इनके साथ पड़ोसी राज्य की राजकुमारियाँ थीं। राजकुमारी यशोधरा राज्य-वैभव की ओर तो इतना ध्यान नहीं दे रही थीं जितना कि सिद्धार्थ के बदन को निहारने

में। अन्य राजकुमारियों से आँख चुराकर वह उन्हीं के वदन को निहारते न थकती थी। यदि कभी कोई राजकुमारी दैव-योग से उसकी चोरी पकड़ लेती तो उसे वह लज्जा के आँचल में छिपाने का विफल सा प्रयत्न करती। उस समय उसकी वह भाव-मुद्रा दर्शनीय होती। इधर देवदत्त भी सहमते हुए कभी-कभी सिद्धार्थ का ध्यान गोपा की ओर आकर्षित कर देते थे। सरल भाव से उसे वे सुन भर लेते थे। उनके मन पर गोपा सुन्दरी की छाप पड़ चुकी थी। उनका मन यह अनुभव करने लगा था कि संसार-जीवन में जीवित रहने योग्य कुछ सामग्री है। उनके तन-मन पर धीरे-धीरे माधुरी सफलता पाने लगी थी। देवदत्त के बारम्बार कहने से उन्होंने निस्पृह भावना से उस ओर दृष्टि डाली तो उस दृष्टि-जाल में वे न जाने कितनी मधुर भावनाओं को समेट लाए! सागर में विक्षेप प्रारम्भ हो गया। भाव वीचियाँ उत्पन्न हो गईं। उनका मन लोभी हो गया। एक बार पुनः दर्शन की तृष्णा जागी। अनुभव स्पर्शने तृष्ण को जन्म दिया और नाम रूपने अनुभव स्पर्श को। उन्होंने एक बार पुनः अपने नेत्र उधर घुमाए। नेत्रों-से-नेत्रों का मिलन हुआ। बेतार का तार रच गया। एक हृदय ने मौन भाषा में भावोद्वेलन किया दूसरे ने उसे धारण किया। उहोंने अनुभव किया। वास्तव में वह अमृत संदेश था। वीचियाँ ज्वार में परिवर्तित हो गईं। जलधि ने गहरी अँगड़ाई ली। व्यग्रता के स्वेद विन्दु ललाट पर मूर्त हो उठे। देवदत्त

ने भाँप लिया। वे निश्चिन्त हो गए। बहाना करते से वे प्राकृतिक सौन्दर्य का पान करने लगे। तराई की हरीतिमा दर्शनीय थी। जिधर दृष्टि जाती थी उधर ही तरुराजि स्वागतार्थ प्रस्तुत थी। पक्षियों का कलरव उनका स्वागत गान था। क्षेत्रों के हृदयों की सरसता कहीं-कहीं सरिताओं के मिस बह रही थी। मार्ग का उतार-चढ़ाव ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रकृति ने यात्रियों के हेतु उनकी सुविधा का ध्यान रखते हुए यह हिंडोलना तैयार किया हो। यह धरती के गीत की आरोही और अवरोही थी। युवक और युवतियों में इस प्रकार छटा अवलोकन हो ही रही थी कि यान उद्यान तक आ गए। मालियों ने यान के अश्वों की वल्गाएँ थाम लीं। सभी उद्यान में प्रविष्ट हुए। माली की निपुणता सबने सराही। उद्यान में पीत-पत्रों का नाम भी नहीं था। मुरझाए पुष्पों की छाया तक न थी। कुछ कलिकाएँ, कुछ मुकुलित और कुछ विहँसित पुष्प ही उद्यान के शृंगार थे। कोई किसी कलिका को और कोई किसी पुष्प को लक्ष्य कर अपने-अपने मन के मधुर भावों की अभिव्यंजना करने लगे। गोपाकुमारी सिद्धार्थ से बात करने का अवसर खोजने लगी। उसे एक उपाय सूझा। उसने उसकी भूमिका प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया। उसने कुमार को सुनाते हुए कुछ ऊँचे स्वर में एक सखी से यह प्रश्न किया—"सखी! भला इस पुष्प का नाम तो बताना जरा?"

"अरी ! मैं क्या जानूँ भला। इसका नाम या तो माली जाने या स्वामी। उन्हीं से पूँछ तो ज्ञात हो सकता है।"

गोपा की सखी का कथन कुमार देवदत्त ने सुन लिया। उसके उत्तर का अर्थ समझकर वे सिद्धार्थ से बोले—"भ्राता जी आप राजकुमारी को पुष्प के नाम से परिचित करा दीजिए।"

"भाई देवदत्त ! तुम ही बतला दो जाकर।"

"मैं भला पुष्पों के नाम क्या जानूँ ? मुझे उद्यान और उद्यान के पुष्पों से क्या प्रयोजन ?"

कुमार देवदत्त के प्रस्ताव का अन्य सखाओं ने भी समर्थन किया। कुमार सिद्धार्थ को विवश हो जाना ही पड़ा। जैसे ही कुमार उसके समीप गए वैसे ही वह अपने में और भी सिमट गई। यह देख सखियों ने अन्य दिशा ग्रहण की और सखाओं ने भी।

"पुष्प मुस्करा क्यों रहे हैं कुमार ?"

"यह कलिका विकास पर क्यों है राजकुमारी ?"

यह तो अद्भुत-बात हुई। दोनों के प्रश्न अपनी-अपनी भाषा स्पष्ट करने नेत्रों से अभ्यर्थना करने लगे। दोनों के सिर उठे। नेत्रों से नेत्रों का मिलन हुआ। प्रश्नों की भाषा स्पष्ट हो गई, और उत्तर भी मिल गया। उन्हें जब अपनी स्थिति का भान हुआ तो दोनों की दृष्टि में लज्जा लिपट गई। उसने उनकी दृष्टियाँ दूसरी ओर घुमा दीं। उनकी मुख-कान्ति पर लज्जा की हलकी सी रेखा दौड़ गई। इस घबराहट

भरी त्रुटि का परिवाह करने के लिए गोपा गुलाब के पुष्प से खेलने लगी और सिद्धार्थ मौलसिरी की पत्तियों से। उसे काँटों की उपस्थिति विस्मृति हो गई। किसी की असावधानी से लाभ उठाने में चेतन प्रकृति क्या जड़ प्रकृति तक भी नहीं चूकती। गोपा की ऊँगली में सहसा काँटा चुभ गया। उसके मुख से एक हलकी सी करुणात्मक सीत्कार पूर्ण चीख निकल गई। उनका ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो गया। ससम्भ्रम उन्होंने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर सावधानी से काँटा निकाला। उसके निकल जाने से वहाँ पर रक्तका एक छोटासा बिन्दु निकल आया। रक्त-विन्दु को देखकर कुमार और घबरा गए। "ओह रक्त !" घबराहट की ही अवस्था में उनके मुख से निकल गया। इधर उसका हाथ जब कुमार ने अपने हाथ में ले लिया तो वह सारी पीड़ा भूल गई। वह अपने तन-मन प्राणों में बहती हुई आनन्द-लहरी का अनुभव करने लगी। इधर जब कुमार उसकी उँगली से काँटा निकाल रहे थे तब वह कुमार की व्यग्रता का विनोद पूर्ण आनन्द लेती हुई मुस्करा रही थी। कुमार को जब यह भान हुआ कि गोपा के विनोद की वे सामग्री बने हुए हैं तो उन्होंने उसका हाथ अपने हाथ से निकल जाने दिया। सस्मित आनन हो उसने कुमार से उलाहने के रूप में निम्न वाक्य कहा—"कुमार! क्या कोई किसीका हाथ पकड़ कर छोड़ भी देता है?"

कुमार अपने इस कृत्य पर लज्जित हो गए। उन्होंने

उसकी ओर करुणा विगलित दृष्टि फेंकी। वह भी अपने वाक्य की कटुता पर प्रायश्चित्त करने लगी। नेत्रोंने अपनी भाषा में समझौते का पत्र लिखा। दोनों के उसी भाषा में हस्ताक्षर हुए। सद्भावनाओं के साथ समझौते की नीति का पालन हुआ।

प्रकृति मंच पर इन दोनों आत्माओं का नाट्य व्यापार चलता रहा। गोपा को सहसा समय का ध्यान आया। चलने की वेला हो चुकी थी। प्रस्थान की तैयारी हुई। सभी प्रासाद की ओर चल दिए। कोयल पास की अमराइयों से बोल उठी। भ्रमर जो पुष्पों पर गुँजारते हुए मधुपान के हित बैठे थे उड़कर नीड़ों की ओर चल दिए। शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन मुक्त राग से बह चला।

दूसरी ओर प्रौढ़ मंडली महाराज शुद्धोदन के साथ घूमती हुई राज्य सीमा, राज्य वैभव, प्रजा की सम्पन्नता, क्षेत्र, प्राकृतिक सुषमा आदि सभी पर दृष्टि डालती हुई जारही थी। कभी-कभी महाराज अपने अमात्य की बुद्धि प्रखरता की बार-बार प्रशंसा करते नहीं थकते थे। समय परिधि से घिरे वे प्रासाद पहुँच गए।

सातवाँ परिच्छेद

अविश्वास

महाराज शुद्धोदन ने आमन्त्रित सज्जनों को आदर-सत्कार सहित विदा किया। महाराज के कानों तक भी कुमार की उद्यानवाली घटना पहुँची। सुनकर उन्हें अधिक प्रसन्नता हुई। आगन्तुकों के आतिथ्य में लगे रहने के कारण सभी के गात्र शिथिल थे, अतः उस दिन सभी ने आराम किया। दूसरे दिन जब अमात्य प्रासाद में आए तो ज्ञात हुआ कि उन्हें महाराज बुला रहे हैं। वे महाराज के समक्ष उपस्थित हुए।

"महाराज की जय हो। सेवक सादर अभिवादन करता है।"

"प्रसन्न हों अमात्य! राज्य के समाचारोंसे अवगत कराएँ।"

"जो आज्ञा महाराज! राज्य में शान्ति है किसी प्रकार की कोई शिकायत नहीं। सभी प्रसन्न हैं।"

"क्या सभी आगन्तुक हमारी सेवाओं से सन्तुष्ट थे?

"जी हाँ, महाराज! सभी लोग परम सन्तुष्ट थे।"

"क्या कल की उद्यान घटना आपको ज्ञात हुई?"

"नहीं महाराज ! क्या इसमें कोई शुभ समाचार निहित है।"

"हाँ अमात्य ! कल हम लोग जब इधर राज्य की वास्तविक परिस्थितियोंसे आगन्तुकोंको परिचित कराने के लिए प्रासाद से निकल गए थे तो उधर कुमार देवदत्त ने सिद्धार्थ को उद्यान के हेतु प्रस्तुत किया । अतिथि राजकुमारियाँ जिनमें महाराज सुप्रबुद्ध की कन्या यशोधरा भी थी, कुमार और उनके सखा, सभी उद्यान को गए। उद्यान में सिद्धार्थ और यशोधरा का एकान्त में प्रेम वार्तालाप हुआ। वास्तव में इसका श्रेय भी आपको हो जाता है।"

"महाराज ! यह तो आपकी उदारता है जो आप सेवक को बड़ाई देने के लिए सबका श्रेय मुझको दे रहे हैं वैसे मुझ सेवक की गणना ही किसमें ?"

"मैंने वास्तविकता के अधिकारी को वास्तविक महत्ता दी। खैर ! यह तो हृदय में रखने की बात है कहने की नहीं। अच्छा ! अब आप यह बतलाएँ कि आगेका कार्य-क्रम किस प्रकार का होना चाहिए ?"

"किस चीज का कार्य-क्रम ?"

"यही कुमार सिद्धार्थ के जीवन के विषय का।"

"महाराज जैसा उचित समझें !"

"मैंने यह सब आप पर छोड़ा।"

"फिर भी महाराज की इच्छा जान लेना सेवक अपना धर्म समझता है।"

"मेरे मतानुसार कोई शुभ दिन शोधकर हमें महाराज सुप्रबुद्ध के पास उनकी कन्या के लिए परिणय-प्रस्ताव भेजना चाहिये ।"

"वे आपके इस अमृतमय प्रस्ताव का खुले हृदय से स्वागत करेंगे । आपके पुराने सम्बन्धी जो होते हैं ।"

अमात्य के इस वाक्य को सुनकर महाराज क्षणभर के लिए प्रसन्न हो जाते हैं पर क्षणोपरान्त ही उनके मुख पर खेलते हुए ये भाव हवा हो जाते हैं। अन्य विचार-प्रकृति उनके मस्तिष्क में प्रवेशकर ज़ाती है। अमात्य की तीव्र दृष्टि से उनका यह भाव परिवर्त्तन बचा नहीं रहता। वे उसी समय महाराज से प्रश्न कर बैठे—"महाराज ! आपमें यह सहसा भाव परिवर्त्तन कैसा ?"

"अमात्य ! क्या आप सुप्रबुद्ध को भूल गए ? क्या उनके स्वभाव का आपको परिचय देना होगा ?"

"नहीं महाराज मैं उनको भूला नहीं हूँ और न ही उनके स्वभाव को। वे बड़े ही स्वाभिमानी हैं महाराज ! क्या उनके स्वाभिमान के कारण आप इस विषय में शंका कर रहे हैं ! मेरा जहाँ तक विचार है कि वे आपके प्रस्ताव का स्वागत करेंगे ।"

"तो मैं यह समझूँ कि आप हमारी प्रथाओं को भी भुला बैठे !"

"नहीं महाराज! कदाचित् आपका संकेत स्वयम्बर की ओर है ?"

"आपने ठीक सोचा।"

"महाराज! तब भी तो आपको अविश्वास नहीं करना चाहिए। कुमार की धमनियों में भी वही रक्त है जो आपकी धमनियों में प्रवाहित हो रहा है। आपने भी तो प्रतियोगिता में विजय पाई थी, फिर कुमार किससे कम हैं ?"

"यही तो रोना है अमात्य! यदि वे इस संसार तथा इस संसार के व्यवहार पक्ष में रुचि प्रदर्शित करते तो मुझे अविश्वास का अवकाश ही क्यों मिलता ?"

"महाराज! यहाँ पर मैं कुछ अधिक बोलने का दुस्साहस कर रहा हूँ इसके लिए मैं क्षमा किया जाऊँ। कुमार आपकी संतान हैं यह ठीक है, पर आपसे अधिक उनको मैं जानता हूँ।"

"पर इस विषय में आप इससे अधिक क्या जानते हैं सो कहें।"

"यही महाराज कि आप उन्हें जैसा समझ रहे हैं वैसे वे हैं नहीं।"

"तो वे किस प्रकार के हैं ?"

"महाराज! वे व्यावहारिक दृष्टि से संसार को उतना ही सत्य मानते हैं जितना कि एक साधारण जन। वे उसमें उतना ही अनुराग दर्शाते हैं जितना कि एक संसारी पुरुष। पारमार्थिक दृष्टि से केवल वे संसार को स्वप्नवत् कहते हैं। यदि

आप कुमार के अस्त्र-शस्त्र नैपुण्य में कुछ शंका दर्शाते हों तो यह कुमार पर आपकी अन्याय दृष्टि होगी।"

"तो आप कुमार के बाहुबल पर इतना विश्वास करते हैं! प्रगट में तो न जाने वे किस संसार में खोए रहते हैं, फिर परोक्ष की बात हमारी समझ में कैसे आए?"

"महाराज! आप अविश्वास के कारण भय कर रहे हैं, आप उन्हें विश्वास की दृष्टि से देखें महाराज! अपने रक्त में अविश्वास..........।"

इतना कहते-कहते सहसा वे महाराज के रुख के संकेत को पाकर रुक गए।

"आपने कुमार में ऐसी कौन-सी चीज देखी है जो आप अपने कण्ठ में इतना विश्वास व्यक्त कर रहे हैं?"

"आपको मैं क्या बताऊँ महाराज की कामिनी की एक मृदु मुस्कान, मनुष्य में कितनी प्रेरणा भर देती है जिससे वह शैलमालाओं के भी मस्तक विदीर्ण करने की शक्ति से परिपूर्ण हो जाता है।"

"आपने पुनः कल्पना पंखों पर बैठ उड़ान भरना प्रारम्भ कर दिया। हमें वास्तविकताकी कठोर कर्म-भूमिका आधार चाहिए।"

"महाराज! क्या आप यह सत्य मानते हैं कि आपके पूर्वज मर्यादा पुरुषोत्तमरामने अपने बाहुबलसे धनुष भंग किया था?"

"यह तो संसार जानता है कि उन्होंने ही धनुष भंग किया था।"

"महाराज भी संसारीजन की भाँति साधारण कोटि में आ गए।"

"अमात्य। आप पहेली बुझा रहे हैं या बात कर रहे हैं?"

"महाराज की अधीरता मुझे सत्य प्रकट करने पर विवश करती है। पूर्व मैं महाराज से प्राण भिक्षा चाहता हूँ तदनन्तर मैं इसका रहस्योद्घाटन कर सकूँगा।"

"आप निर्भीक स्वर में कहें।"

"क्या आपने कोलीयों की राजधानी देवदह में जाकर अन्य राजकुमारों की प्रतिस्पर्धा में स्वयं विजय पाई थी?"

"और किसने पाई थी?"

"क्या आपके हृदय में किसी की माधुरी मूर्त्ति बैठी हुई आपको प्रेरणा नहीं दे रही थी?"

हा......हा......हा! महाराज कहकहा लगाकर हँस पड़े। अमात्य अनाशित कहकहेसे चौंक गए। शनैः शनैः उनका कह-कहा मन्द हास्य में परिणत होकर अन्त में स्मिति बनकर उनके अधरोंपर खेलने लगा। कभी वह अधरों की ओट ले छिप जाता था तो कभी प्रकट हो जाता था। इसी मुद्रा में वे अमात्य से बोले—"आप वृद्ध हो गए पर आपका विनोद न गया।"

"वास्तविकता की हँसी न उड़ाइए महाराज! आप मेरे प्रश्न का उत्तर दें।"

अमात्य के बचनों को सुनकर महाराज कुछ गम्भीर हो गए। उनकी भाव-भंगिमा को लख स्मिति अपना खेल भूल गई और अधरांगण से भाग गई। उन्होंने विगत पर स्मृति

तूलिका चलानी प्रारम्भ की। वे उस समय के बहुत ही पुराने चोर को हृदय के अन्तरतम पटसे निकालने का प्रयत्न करने लगे। जब स्मृति-तूलिका से धूमिल पट के अक्षरों पर पुनः रंग चढ़ा तो उन्हें अपना अभीप्सित प्राप्त हो गया। गम्भीर मुद्रा में वे बोले—"अमात्य! आपने ठीक ही कहा। उस समय मेरे हृदय में बैठा-बैठा अन्य ही कोई प्रेरणा भर रहा था।"

"पहले वाले प्रश्न का भी यही उत्तर है महाराज!"

"आपकी बात का यह अर्थ हुआ कि सीताजी ने राम के हृदय में बैठकर उन्हें धनुष भंग करने की शक्ति प्रदान की थी! इस तथ्य को मैं स्वीकार करता हूँ। अब यह तो कहिए कि—"उनको संदेश कब भेजना चाहिए?"

"महाराज अभी उन्हें राजधानी पहुँचने दें। इस उद्यान वाली घटना की रनिवास में भी चर्चा फैल जाने दें, तदनन्तर सन्देश भेजने की बात सोची जाय।"

"अच्छा! तो जब आप उचित समझें तब उनके यहाँ यह संदेश भिजवाने का प्रयत्न करें।"

"जो आज्ञा महाराज! सेवक आज्ञा चाहता है।"

"क्या कार्य की शीघ्रता है?"

"जी हाँ महाराज!"

"सब कुशल तो है?"

"आपकी कृपा से कुशल है।"

"अच्छा! तो आप जा सकते हैं।"

"आदर प्रदर्शनोपरान्त अमात्य राजकार्य करने के हेतु चले गए।"

उनके चले जाने पर महाराज की विचार-तूलिका कुछ बनाने और कुछ मिटाने में निरत हो गई :—

"कुमार! तुम मेरे लिए एक समस्या हो जिसे सुलझाने में मैंने कुछ भी न उठा रखा। अपनी सारी शक्ति लगा दी। इसके उपरान्त भी मैं तुम्हें समझ नहीं पा रहा हूँ। यदि मैं तुम्हें समझ लूँ तो अपनी समस्या का उत्तर भी पा लूँ। अमात्य तुम्हें समझने का दावा करते हैं। उनका कथन मुझे कुछ-कुछ सत्य प्रतीत हो रहा है। उन्होंने तुम्हें समझा है इसलिए ही तो वे इस समस्या को किसी सीमा तक हल कर सके हैं। समस्या का हल किसी को प्राप्त हो मुझे इससे कोई सम्बन्ध नहीं। मैं तो तुम्हारी प्रसन्नता चाहता हूँ बस!"

आठवां परिच्छेद

'कामना'

राज कुमारी गोपा जब तक कपिलवस्तु में रही तब तक कुमार सिद्धार्थ के मनमें उसके विषय में कोई विचार न आया। जब वह चली गई तब उन्हें कुछ-कुछ आकुलता का अनुभव हुआ। आकुलता की भाषा भावों का स्पष्टीकरण न कर सकी। इसका क्या कारण था?''' विदाई के समय जिन नेत्रों से यशोधरा ने उनकी ओर देखा था, हाथ जोड़ प्रणाम किया था, धीरे से विनोद-मुद्रा में देवदत्त ने जिसे भाभी कहा था तथा जिसे सुनकर वह लजभरी थी, उसके कपोल आरक्त हो गए थे, वह माधुरी उस समय जो उसके मुख पर छाई हुई थी क्या वह कभी भुलाई जा सकती थी। सिद्धार्थ का देवदत्त के आग्रह से उसके और निकट जाना तथा उसका देवदह आने के लिए निमन्त्रित करना, क्या इन मधुर स्मृतियों को कभी भुलाया जा सकता है? उसके कण्ठ में कितनी अनुनय और कितना आग्रह भरा हुआ था।

कुमार इसी प्रकार के विचारों में ग्रस्त थे पर अब भी उन्हें आकुलता की भाषा स्पष्ट न हो पाई थी। वे अनजाने ही इसमें गहरे उतरते जा रहे थे। उन्हें रह-रहकर किसी का अभाव-स्खलन हो रहा था। वे प्रयास करने पर भी कुछ न जान पा रहे थे। ऐसे विचार-शून्यता के अवसर पर उनकी रिक्तता पूर्त्ति के हेतु संसार दुःख के नाना विचार आकर उनके मस्तिष्क को घेर लेते थे, पर दूसरे ही क्षण वे भी विचारों की सुनहरी आभा में खो जाते थे। उन्हें एक-एक घटना, एक-एक बात, एक-एक हाव, एक-एक भाव, बारी-बारी से स्मरण हो रहे थे। पुरस्कार के समय किसी भी सुन्दरी ने उनसे आँख तक मिलाने का साहस नहीं किया था फिर बात करने की सोचना तो दूर रही। एक गोपा ही ऐसी थी जो उनसे बोल सकी थी। उसने उनका हृदय हर लिया था। यह था पूर्वानुराग। यहीं प्रणय-जीवन जन्म ग्रहण करता है, शिशु से किशोर होता है, आगे जो परिणय संस्कार में युवा होकर पूर्णता को प्राप्त करता है। कुमार के जीवन में उनके विचारों में एक विक्षेप तो आ ही गया। समय की शक्ति के आगे हम सभी विवश हैं। कुमार भी⋯⋯। जीवन में सुख है तो दुःख है। सँयोग भी है तो वियोग भी। हास है तो अश्रु भी। किम्बहुना! द्वन्द्व की अनुभूतियाँ श्वासोच्छ्वासमय जीवन को सार्थकता प्रदान करती हैं। द्वन्द्व न होने से जीवन धूप-ही-धूप या छाया-ही-छाया का अनुभव

करेगा। जीवन एकरस हो जायगा। उसकी एकरसता में परिवर्त्तन की मनहूस छाया तक नहीं पड़ती। जहाँ परिवर्त्तन नहीं वहाँ गति ही नहीं। जहाँ गति ही नहीं वहाँ जीवन ही नहीं। जहाँ जीवन ही नहीं वहाँ संघर्ष ही नहीं। जहाँ संघर्ष ही नहीं वहाँ द्वन्द्व ही नहीं। जहाँ द्वन्द्व ही नहीं वहाँ जीवन की सार्थकता ही नहीं। सार्थकता रहित जीवन निस्सार है। सुख-दुःख, धूप-छाँह से रहित जीवन असार है। जिसका जीवन असार है वे संसार को भी असार कहते हैं। कुमार का जीवन यदि इस कसौटी पर कसा जाय तो उनका जीवन सारयुक्त प्रतीत होता है। वे अपने सुख-दुःख की बात नहीं सोचते। वे विश्व-प्राणी के सुख-दुःख की बात सोचते हैं। उनके जीवन के विचार, उनके जीवन की सार्थकता, प्राणिमात्र के विचारों और उनमें सार्थकता भरने में ही है। यदि संसार दुःखी है तो वे सुख की नींद नहीं ले सकते। उनका हृदय लोक-हृदय है। उनके हृदयों की द्वन्द्वानुभूति की झाँकी कुमार के हृदय की द्वन्द्वानुभूति की भी झाँकी है। यह शक्ति करुणा ही में है जो मनुष्य को उक्त शक्ति प्रदान करती है। यह करुणा मनुष्य-मात्र की सहायतार्थ किसी को भी कटिबद्ध कर सकती है। सिद्धार्थ के जीवन में यह करुणा ही उनको शान्तिपूर्वक नहीं बैठने देती। वे परोपकार में ही जीवन का साफल्य पाते हैं। उनके इस प्रकार के विचारों से कुछ क्षण गोपा की स्मृति ने ले लिए जिनका उन्होंने इस प्रकार उपयोग किया:—

"मेरा मन आज तक किसी की ओर आकर्षित नहीं हुआ न ही किसी कुमारी के विषय में उसने सोचा। कितनी अद्भुत् बात है कि इतनी कुमारियों के होते हुए भी किसी की ओर भी आकर्षित नहीं हुआ पर वह हठात् गोपा की रूपकारा का बन्दी बन गया। उसने न जाने कौन सी मोहनी मेरे प्राणों पर डाली कि मेरा मन उसकी माधुरी-मूर्त्ति का उपासक हो गया। मैं सुन्दरियों से दिन-रात आवृत रहता हूँ पर कोई भी सुन्दरी मेरे मानस-गीत की कोमल कड़ी न बन सकी और न ही मैं किसी के हेतु सुधा-धार बन सका। वास्तव में गोपा! तुमने कितना साहस किया जो भरी सभा में अपनी सरल वाक्यपटुता से मुझे अपना कर लिया। मन! तूने अमूल्य निधि पा ली। मुझे तुम पर विश्वास है गोपा तुम मेरे मन के अनुकूल अपने को ढाल सकोगी। मेरे शून्य मन अजिर में तुमने प्राणों का सजीव राग भर दिया। तुमने मेरी सूनी मन-बीन की प्राण-तन्त्री छेड़ दी जिससे ऐसे मोहक राग का सृजन हुआ कि जिसमें मेरा संसार खो गया। तुम्हीं मेरे जीवन की सजीव उल्लास पुत्तलिका हो।"

इस प्रकार कुमार की विचार-बेलि का प्रसार हो रहा था। उनके विचारों में अब शनैः शनैः स्पष्टता आती जा रही थी। नाम-रूप ने उनके मन की सृष्टि ही बदल दी। अब उनका अन्तर्जगत् ही कुछ दूसरा हो उठा। कौन-सा परिवर्त्तन संसार में सबसे अधिक महत्त्व रखता है? क्या भौतिक-जग

का परिवर्त्तन .... नहीं ...... विचार-जगत् का परिवर्त्तन !!! विचार-परिवर्त्तन ही स्थूल परिवर्त्तनों का निदान है। कुमार के विचार-जगत् में भी परिवर्त्तन है। उन्होंने इसका अनुभव किया उन्हें सृष्टि आनन्द में झूमती हुई प्रतीत हुई। धरती के मधुरतम पट से कोई उन्हें प्रणय-रागिनी सुनाने लगा। तन, मन, प्राण ठग से गए। गोपा के सौन्दर्य के समक्ष रति का सौन्दर्य भी मन्द पड़ गया। दासियों ने भी कुमार में परिवर्त्तन देखा। महारानी, महाराज और अमात्य ने भी। पहले कुमार अपनी वाटिका में जाते तो खिले हुए कुसुम-स्तवकों पर उनकी दृष्टि ही न जाती थी, केवल मुरझाए हुए फूलों पर ही उनकी दृष्टि जमती थी। वे घंटों तक उनकी ओर देखते रहते थे। उनके कोमल चित्त पर विषाद की छाया घिर आती थी। वे न जानें उससे क्या-क्या बातें किया करते थे? परिचारिकाओं ने यह जाना तो महाराज को सूचित किया। उस दिन से कुमार की वाटिका में मुरझाए हुए पुष्प और पीत-पत्र कभी देखने में भी न आए। अब वे अपने विकसित मनसा पुष्प के अनुरूप वाटिका पुष्पों की ओर घंटों देखा करते थे। उनके इस भाव को लख सम्पूर्ण कपिलवस्तु चिन्ताभार से रहित हो आनन्द से विचरने लगा।

नवां परिच्छेद

'सन्देश'

अमात्य ने यथासमय महाराज शुद्धोदन का सन्देश एक पुरोहित, एक नाई तथा कुछ सैनिकोंके साथ भेजने की योजना कर दी। उन्होंने पुरोहित को सब कुछ समझा दिया। वे कोलीयों की राजधानी देवदह के लिए रवाना हुए। मार्ग में रमणीक दृश्य थे। प्रकृति ने उन्हें मार्ग का श्रम न होने दिया। अनुमानित काल के अन्दर ही वे देवदह में प्रविष्ट हुए। वह नगरी शोभा में अलकापुरी सी लग रही थी। द्वार-द्वार पर मंगल-कलस विराज रहे थे। सभी स्थान मंगल-चिह्नों से परिपूरित थे। महाराज सुप्रबुद्ध का प्रासाद दूर से चमक रहा था। उसका गर्वोन्नत ललाट आकाश से बातें कर रहा था। उन्होंने आपण में प्रवेश किया। उसकी शोभा देखकर उनका मार्ग-श्रम मिट गया। पुरोहित जब मिष्ठान्न के बाज़ार में पहुँचे तो उनके मुँह में, वहाँ के मिष्ठान्न देखकर, पानी

भर आया। बहुत संयम के उपरान्त उनकी रसना शान्त हुई। इसके उपरान्त वस्त्रापण आया तदुपरान्त अस्त्र-शस्त्रका बाजार। पुरोहित ने अपने नेत्र बन्द कर लिए और नाई को झिड़ककर बोले—"क्यों रे! तुझसे यह किसने कहा था कि तू अस्त्र-शस्त्र के बाजार से होकर हमको ले चलना?"

"पुरोहित जी! आप क्रोध न करें। आपको क्रोधित देख कर मुझे अपने प्राण भी संकट में दिखलाई पड़ते हैं। यहाँ अस्त्र-शस्त्र उपस्थित हैं। कहीं आपने क्रोध में आकर मुझपर कोई अस्त्र चला दिया तो मैं बिना मौत ही मारा जाऊँगा। मेरी पत्नी और सन्तान कहीं के न रहेंगे। आप कृपया आँखें बन्द ही रखिए मैं आपकी उँगली पकड़ कर यह आपण पार करा दूँगा। आप क्रोध न करें इसमें मेरा कोई दोष नहीं, प्रासाद का मार्ग ही इधर से होकर जाता है।" इतना कहकर उसने पुरोहित की उँगली पकड़ ली और चलने लगा। उनकी वार्ता को सुन वहाँ की जनता विनोदमयी हो उठी। कोई उनकी वीरता पर फुलझड़ी छोड़ने लगा तो कोई कुछ। इस प्रकार उनके पीछे बहुत बड़ा जमघट हो गया। किसी-किसी ने उनका देश पूछा। उन्होंने जब जाना कि ये कपिलवस्तु से आए हैं तो सभी लोग ठहाका मारकर हँस पड़े, आपस में इस प्रकार कहने लगे—"उसी देश से ये आ रहे हैं जिस देश के राजकुमार पक्षियों पर भी करुणा करते हैं और अपनी प्रजा को भी करुणा का पाठ पढ़ाते हैं। उसी का

तो यह फल है कि अस्त्र-शस्त्रों को देखकर इन लोगों के प्राण सूख गए ?"

"हाँ, भाई ! जिस देश का राजकुमार दुर्ग से बाहर ही न निकलता हो, सदा दासियों से ही सेवित रहता हो, पक्षियों पर दया करता हो और प्रजा को क्षमा और अहिंसा का पाठ पढ़ाता हो, वहाँ के लोग और हो ही कैसे सकते हैं। देख नहीं रहे हो जो इनके साथ सैनिक हैं, कैसे मुर्दे से चल रहे हैं मानो शरीर में जान ही नहीं !" उसके वाक्यों को सुनकर सभी और अधिक विनोद लेने लगे।

"मालूम है ! कि ये आखेट के लिए भी कभी नहीं निकलते।"

"अरे ! आखेट के लिए वे निकल ही कैसे सकते हैं उनके अन्दर पौरुष हो तब न !"

इन लोगों के विनोद को देखकर नाई और अधिक विनोद की मुद्रा में हो गया। उसने झूठ ही कह दिया कि महाराज अब आँख खोलें, अस्त्र-शस्त्रों का आपण समाप्त हो गया। इतना सुनते ही पुरोहित ने आँख खोलकर एकदम बन्द कर ली और दूने वेग से क्रोधित हो उसे बुरा भला कहने लगे। इधर वे जितना ही उसपर बिगड़ते जाते थे, लोग उतना ही उनके उस भाव से विनोद लेते जाते थे। लोगों की इतनी भीड़ उनके पीछे हो ली कि मानों एक छोटा-मोटा मेला सा चल दिया। विनोद की यह लहर देवदह के

एक कोने से दूसरे कोने तक विद्युत् वेग सी बह गई ! जिधर सुनो उधर ही यह चर्चा। पुरोहित चुपचाप लोगों की बातें सुन रहे थे। रह-रह कर उसे क्रोध तो आता था पर अभी वह आपण ही समाप्त न हुआ था तब वह आपण समाप्त हो गया तो वे जनता की ओर झपटे। कहने लगे—"तुम लोग किसकी खिल्ली उड़ा रहे थे ? कुमार सिद्धार्थ की ? उनकी माता की ? उनके पिता की ?............तो सुनो तुम जिस कुमार पर हँस रहे हो वह एक महापुरुष है। हमें अपने भाग्य की सराहना करनी चाहिए कि उन्होंने हमारे मध्य जन्म ग्रहण किया। हमें उनका आदर करना चाहिए न कि हँसी उड़ानी चाहिए। यदि उनकी हँसी उड़ा रहे हो तो उनकी माता की हँसी उड़ा रहे हो ! जानते हो उनकी माता किस देश की हैं ?............इसके अर्थ यह हुए कि तुम जिस राज्य में रहते हो और जिस राजा का नमक खाते हो उसकी हँसी उड़ा रहे हो ! तुम हिंसा के अन्धे क्या जानो करुणा महत्त्व ? क्या जानो दया और क्षमा की शक्ति ? तुम्हारी आँखों पर हिंसा का आवरण पड़ा है इसलिए तुम्हें विश्व ही हिंसामय दीख रहा है। वह समय दूर नहीं जिस दिन तुम्हें भी इस शील पर चलना पड़ेगा। कुमार की करुणा-शक्ति ही ने तो उस राजहंस को भी अपना बना लिया था जिसे कुमार देवदत्त ने अपने बाण का लक्ष्य बनाया था।..................

"उन्होंने भर्त्सनापूर्ण भाषण तब तक जारी रखा जब तक विनोद-मेले का हर एक सदस्य वहाँ से चला नहीं गया। सबकी विनोद-मुद्रा पल भर ही में न जाने कहाँ चली गई। जब सब लोग वहाँ से चले गए तो पुरोहित के मुखपर विजयश्री मुस्करा उठी। वे गर्व से ग्रीवा तान कर चलने लगे। वे प्रासाद के मुखद्वार पर पहुँच गए। प्रतिहारी ने उनके आगमन की सूचना महाराज सुप्रबुद्ध को दी। अचिरकाल ही में वे प्रासाद के अन्दर थे। ये लोग उस समय प्रासाद में प्रविष्ट हुए जिस समय महाराज का दरबार लगा हुआ था। उन्होंने पुरोहित को दरबार ही में बुला लिया। पुरोहित ने महाराज के दरबार को देखा। उसकी शोभा को आँखों से पिया। कितना भव्य दरबार है यह! महाराज ने संदेश पढ़ा। पुरोहित अब उनकी ओर आकर्षित हुए। उन्होंने महाराज की मंगल-कामना की। कुछ सोचकर वे बोले :—

"महाराज! आपने हमारे महाराज का संदेश पढ़ लिया?"

"हाँ, पुरोहित जी! यह तो हमारे लिए प्रसन्नता की बात है।"

"महाराज की जय हो! मुझे भी महाराज से इसी उत्तर की आशा थी।" उन्होंने प्रसन्नता प्रकट करते हुए महाराज से कहा।

"पर इसमें कुछ बाधा भी है पुरोहित! यदि वह दूर हो जाय तो सभी कुछ ठीक हो सकता है।"

"कैसी बाधा महाराज! इसमें मुझे कल्याण-ही-कल्याण दीखता है। आपको पूर्ण चन्द्र-संदेश में बाधारूपी ग्रहण कहाँ पर दीखता है महाराज?"

"आप जानते हैं कि हम क्षत्रिय हैं।"

"अच्छी प्रकार महाराज! इसीलिए तो उनके पूर्वजों ने आपसे सम्बन्ध स्थापित किया था।"

"यह मैं भी जानता हूँ कि वे मेरे सम्बन्धी भी होते हैं।"

"महाराज! फिर बाधा कैसी?"

"आप यह भी जानते हैं कि हमारे पूर्वज इक्ष्वाकु थे?"

"भलीभाँति महाराज!...पर मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि वंश-परम्परा और इस प्रसंग से क्या सम्बन्ध है?"

"सम्बन्ध केवल पौरुष का है।"

"कैसा महाराज?"

"यही कि हम जिसको अपनी कन्या देते हैं तो पहले यह भी देख लेते हैं कि वह व्यक्ति हमारी कुल कन्या के उपयुक्त है या नहीं और फिर यशोधरा के विषय में तो हमें अधिक सतर्कता से काम लेना पड़ेगा, क्योंकि उसने बचपन ही में महाराज सिंह-हनु के लौह धनुष को खेल-ही-खेल में उठाकर उस धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ा दी थी. जिस धनुष को बड़े-बड़े योद्धा तक उठाने में असमर्थ रहे थे। अतः आपही सोचें पुरोहित! कि इसमें बाधा क्योंकर नहीं हो सकती? मैंने कुमार के विषय में सुना है कि वे न तो आखेट ही के लिए

कभी निकलते हैं और न वे जीवहत्या में विश्वास करते हैं जो कि क्षत्रियों का एक स्वाभाविक गुण है।"

"यह तो सत्य है महाराज!"

"फिर आपही कहें कि महाराज ने कौन सी आशा लेकर आपके साथ यह संदेश भेजा है?"

"महाराज! यदि क्षमा किया जाऊँगा तो कुछ निवेदन करूँ?"

"आप इस विषय पर बोलने में पूर्ण स्वतन्त्र हैं।"

"महाराज! सभी राजकुमार इस प्रकार के सुकुमार वातावरण में पालित-पोषित होते हैं पर क्या वास्तव में वे वातावरण के ही साँचे में ढल जाते हैं?...मैं जहाँ तक जानता हूँ वहाँ तक कह सकता हूँ कि कभी नहीं। वे ही राजकुमार क्रोध आने पर पर्वत-मस्तकों को विदीर्ण करते हैं। उनकी मुख-मुद्रा उस-समय ज्वाला बरसाती है। इसलिए आप ऐसा कहकर कुमार सिद्धार्थपर अन्याय कर रहे हैं।"

"अन्याय क्यों? मुझे तो आजतक भी इस बात की सूचना नहीं कि कुमार के लिए शस्त्र-शिक्षण का भी कोई प्रबन्ध है?"

"महाराज! कुमार की शस्त्र-शिक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध है। कुमार उसे रुचिपूर्वक सीखते हैं।"

"यह अद्भुत वैपरीत्य है! अहिंसा का पोषक शस्त्र-शिक्षा ग्रहण करता है!"

"महाराज! कुमार के सभी विचार जब आप पूर्णतया जान लेंगे तब आप कभी भी यह बात नहीं कहेंगे और न ही आश्चर्य प्रगट करेंगे।"

"तब तो मैं अवश्य ही उनके विचार जानना चाहूँगा।"

"तो सुनिए महाराज! कुमार कभी किसी निर्बल असहाय और रसनाहीन पर वार नहीं करते और उसपर आक्रमण करना भी वे अनुचित बतलाते हैं। यदि व्यक्ति सशक्त है तो उसे चाहिए, कि जहाँ दुर्बलों पर आत्याचार होते हों वहाँ जाकर वह आततायियों से उनकी रक्षा करे। मनुष्य की शक्ति का यही उचित प्रयोग है। हम सशक्त इसलिए नहीं हैं कि दुर्बलों को सताएँ।—मनुष्य स्वभावतया करुणा का पुतला है, शान्ति का पुजारी है। वे संसार को दुःखों के जाल से मुक्त करने की सोचा करते हैं। वे व्यावहारिक दृष्टि से संसार की सत्ता को सत्य मानते हैं और पारमार्थिक दृष्टि से स्वप्नवत्।............"

"शब्दों का कितना सुनहला जाल आपने फैला दिया पर इसमें फँसने का कोई नहीं!"

"राम राम-राम......यह आप क्या कह रहे हैं महाराज! आपको जिससे प्रतीति हो वही मार्ग अपनाएँ। मैंने तो जो कहना अपना कर्त्तव्य समझा वह कह दिया।"

"इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं है पुरोहित जी! वास्तव में मैंने उनके विषय में यह और सुना है कि वे

अहर्निशि किसी न किसी चिन्ता ही में निमग्न रहा करते हैं—और उनके आचार-विचार भी एक सन्यासी जैसे हैं।"

"यदि उनके आचार सन्यासियों के से होते तो वे पाँच प्रकार के काम-भोगों से सेवित क्यों रहा करते? वे निष्पुरुष हो महल में क्यों विचरते? उन्हें विलासिता की धार अपने वक्ष पर दिन रात बिठाए क्यों रहती? महाराज ने ऋतुओं की माया से उन्हें बचाने के लिए तीनों ऋतुओं के लिए पृथक् पृथक् महल बनवा दिए हैं। उनमें एक नौ तल का, दूसरा सात तल का और तीसरा पाँच तल का है। इनमें चौवालीस हजार नाट्य करने वाली स्त्रियों को नियुक्त किये हैं। वे ऋतुओं के अनुकूल प्रासादों में विहार करते हैं। उनके इन आचार-विचारों को यदि आप सन्यासियों के से आचार-विचार कहना चाहें तो कह सकते हैं।"

"हम आपकी हर बात मानते हैं, पर हम अपनी प्रथा तो नहीं तोड़ सकते?"

"कैसी प्रथा राजन्?"

"स्वयम्बर की।"

"ओ! अब मैं समझा महाराज का आशय! इसमें भी हम लोगों को कोई भी आपत्ति नहीं होगी।"

"तो यही मेरा संदेश के प्रति उत्तर है।"

"महाराज! मैं आपसे यह निवेदन करने का साहस कर रहा हूँ कि आप अपने इस निर्णय में यदि किञ्चित भी परि-

वर्त्तन का अवकाश पायें तो परिवर्त्तन करने की कृपा करें।"

"ओ!······अब पकड़ा आपके मन का चोर! तो आप डर रहे हैं कि कुमार कहीं प्रतियोगिता में हार न जायँ?"

महाराज के इस प्रकार के वार्तालाप को सुनकर पुरोहित अपने कानों पर हाथ रखते हुए कहने लगे :—

"राम···राम···राम! ऐसा भय करना तो आपने महाराज में अविश्वास करना है। मैं किसी भी बात का भय नहीं करता।"

"फिर आप स्वयम्बर की बात में सुधार की क्यों कह रहे हैं?"

"महाराज! मैंने दोनों महाराजों की सुविधा का ध्यान रखते हुए यह बात कही थी और उसमें भी विशेषतया आपकी सुविधा के ध्यान से।"

"मुझे इसमें कोई असुविधा न होगी। यह तो राज-काज है, सब होते ही रहते हैं।"

"आपकी जैसी इच्छा महाराज!"

"आप यात्रा के श्रम से काफी शिथिल होंगे, अतः आप श्रम परिहार के हेतु अतिथिशाला में पधारें। कल मैं फिर मिलूँगा। दो चार दिन देवदह में ठहरकर जाइएगा।"

"बहुत अच्छा महाराज! इतना कह, सादर अभिवादन कर पुरोहित अतिथिशाला की ओर उठकर चल दिए।

कुछ दिन देवदह में महाराज का आतिथ्य स्वीकार कर ठहर गए। कुछ दिन ठहरने के उपरान्त वे महाराज से विदा लेकर कपिलवस्तु आए। प्रासाद का हर सदस्य पुरोहित की प्रतीक्षा कर रहा था। वे अमात्य से मिले, पर अन्यमनस्क भाव से। उनका माथा ठनका। उन्होंने पुरोहित से निर्णय पूँछने का बहुत प्रयत्न किया, पर उन्होंने उसे महाराज के समक्ष ही कहना स्वीकार किया। अमात्य की जिज्ञासा शान पर चढ़ा दी गई। वे उनको और अधिक पूँछने लगे। जब उन्होंने नहीं बताया तो वे कहने लगे—"ज्ञात होता है कि वहाँ आपका कोई सत्कार नहीं हुआ। महाराज सुप्रबुद्ध ने कोई अनुकूल संदेश नहीं भेजा है। यही कारण है कि तुम मौन हो।"

"नहीं ऐसी, तो कोई बात नहीं।"

"तो फिर स्पष्ट कहिए ना, अब तो बहुत परीक्षा हो गई। किसी चीज की हद भी होती है। जिज्ञासा मेरे प्राणों पर आ गई है, आप फिर भी मौन हैं।"

"मैं यह सोच रहा हूँ कि यदि आपसे उनका उत्तर मैंने कह दिया तो आपको महान् क्लेश होगा।"

"आप मेरे क्लेश की चिन्ता न कर, कृपया शीघ्र ही उनका उत्तर प्रकट करें।"

"उन्होंने स्वयम्बर की बात कही है।"

इतना सुनते ही अमात्य का चेहरा उतर गया। वे इस प्रकार मानो उन्हें कोई काठ मार गया हो। मूर्तिवत् खड़े रहे।

पुरोहित ने उनकी यह दशा देखी तो वह उनकी मुद्रा भंग करने के लिए सहानुभूति प्रकट करने लगे।

"तभी तो मैं कह नहीं रहा था। मैं जानता था कि महाराज से अधिक इसका दुःख आपको होगा। आप निश्चिन्त हो जायँ, कुमार प्रतियोगिता में विजयी होंगे, यह ब्राह्मण का वाक्य है, कभी मृषा नहीं हो सकता।"

उनके कानों में पुरोहित के पिछले वाक्य ने प्राण-मंत्र फूँक दिया। उनमें गति आई और वे बोले :—

"पुरोहित! आप महाराज को सन्देश दे आइए। मैं उनसे फिर मिल लूँगा।"

"आपकी जैसी आज्ञा।" इतना कह पुरोहित ने महाराज की मंगल-कामना की और सुप्रबुद्ध का संदेश कहा। महाराज भी सोच में पड़ गए। उन्हें अमात्य का यह वार खाली देखकर आश्चर्य हुआ। उन्हें इतना दुःख सन्देश सुनकर नहीं हुआ जितना कि अमात्य की असफलता पर दुःख हुआ। उनके मुख से हठात् निकल गया—"अमात्य! यह तुम्हारी हार हुई।" महाराज कुछ देर विचार-मग्न खड़े रहे, फिर पुरोहित की तरफ आकर्षित होकर बोले—"यात्रा के श्रम से आपके सभी गात्र शिथिल होंगे, अतः आप आराम करें।"

"जय हो महाराज! आपके राज्य का तथा राज-परिवार का मंगल हो।"

इधर जब पुरोहित अपने आवास की ओर जा रहे थे तो एक दासी ने उन्हें कुमार का सन्देश दिया। वे कुमार के प्रासाद की ओर चल दिए। उनके पूछने पर सरल भाव से पुरोहित ने स्वयम्बरवाला निर्णय उन्हें सुना दिया। वे कुछ देर तो मौन रहे फिर पुरोहित से बोले—"यदि यह बात है तो महाराज सुप्रबुद्ध को हार खानी पड़ेगी और उन्हें मेरे विषय में विचार-परिवर्त्तन करना पड़ेगा।"

"यह मेरा आशीर्वाद है कुमार! तुम इसका उन्हें मुँह-तोड़ उत्तर दोगे।"

"ऐसा ही होगा।"

"अच्छा! अब मुझे आज्ञा दें कुमार।"

"हाँ! अब आप जाएँ। सादर प्रणाम करता हूँ पुरोहितजी!"

"चिरंजीवी भव! कुमार!!

कुमार ने मन में अनुमान किया—"इस संदेश को सुनकर महाराज और महारानी दोनों ही दुःखी हुए होंगे, अतः मैं चलकर उन्हें ढाँढस बधाऊँ तो श्रेष्ठ होगा।" ऐसा सोचकर वे महाराज और महारानी के पास गए और उन्हें अनेक प्रकार से सान्त्वना दी।

इधर अमात्य एकान्त में थे। अतः वे इस पर ही सोच रहे थे। उन्हें उनसे इस प्रकार के उत्तर की आशा न थी। अतः वे अपने विचारों को यहीं से गति देने लगे—"महाराज सुप्रबुद्ध से कदाचित् ही उत्सव और उद्यान का वृत्तान्त छिपा

रहा हो, फिर भी उन्होंने अपना यह निर्णय भेजा ? .....उनके इस निर्णय में 'अहम्' की झलक है। उनकी इतनी अहम्मन्यता उचित नहीं। कुमार! अब तो हमें तुम्हारे ही बाहुबल का भरोसा है ? प्रतिष्ठा, कुल की लज्जा सब तुम्हारे ही आधीन है। चाहे उसे रखो, चाहे मिटाओ। कुमार! जरा अपने पूर्वजों के उस पराक्रम का भी तो स्मरण करो, जिस पराक्रम को लेकर वे काल से भी भिड़ जाते थे। जो रक्त उनकी शिराओं में प्रवाहित होता था, वही रक्त तुम्हारी भी शिराओं में प्रवाहित हो रहा है। उस रक्त-प्रवाह में यदि दुगुना वेग था तो तुम्हारे रक्त-प्रवाह में चौगुना। तुम्हें कोलीय महाराज का गर्वोन्नत ललाट झुकाना होगा। आज से मैं ही तुम्हारी अस्त्र-शस्त्र शिक्षा का भार लेता हूँ और फिर देखता हूँ कि तुम्हें प्रतियोगिता में कौन पछाड़ता है ?"

दसवाँ परिच्छेद

'स्वयम्बर'

देवदहनगरी एक सप्ताह पूर्व से ही सजाई जाने लगी। प्रतियोगिता क्षेत्र से प्रासाद तक की सजावट इस प्रकार हुई मानो स्वयं विश्वकर्मा ने ही उस नगरी को सजाया हो। प्रत्येक बीथी, गृह, प्रासाद, आपण सभी से सजावट की झलक मिल रही थी। यहाँ पर पड़ोसी राज्यों के राजकुमार शूर-वीर, योधा, सभी प्रकार के व्यक्ति एकत्रित होंगे। स्वयम्बर समारोह होगा। सुप्रबुद्ध की कन्या यशोधरा का हाथ उसी राजकुमार के हाथ में दिया जायगा जो प्रतियोगिता में प्रथम आएगा। राजागण भी अपने-अपने राजकुमारों का शिल्प देखने के लिए यहाँ एकत्रित होंगे।

देवदह वासियों को जिस दिन की प्रतीक्षा थी वह दिन आखिर आ पहुँचा। तोरण, बन्दनवार, और मंगल-कलश

प्रत्येक द्वार को सुशोभित कर रहे थे। समग्र देवदह प्रसन्नता के नद में तिर रहा था। कोलीय आज अपने पड़ोसी राज्यों को विभव-गरिमा से परिचय करा देना चाहते थे। वे देवदह को सजाने में तल्लीन थे। प्रत्येक किसी न किसी कार्य में लगा हुआ था। सभी को मुख-मुद्रा से कार्य-व्यग्रता टपक रही थी। कोई किसी कार्य के हेतु इधर जा रहा था तो कोई उधर। किसी को अमुक कार्य की शीघ्रता थी तो किसी को अमुक। किसी के पास कोई वस्तु कम पड़ी तो वह दूसरे के पास भागा जा रहा था। किम्बहुना किसी को किसी की सुनने का अवकाश नहीं था। आज इन्द्र की सम्पूर्ण सुधर्मा-सभा ही मर्त्यलोक में उतरकर आ गई थी। देवगण मनुष्य रूप में स्वर्ग से उतर-उतर कर प्रतियोगिता दर्शनार्थ आ गए थे। उनकी माया को किसी ने भी नहीं जाना। राजा जनक के यहाँ सीता-स्वयम्बर हुआ था। विश्वामित्र के साथ राम, लक्ष्मण दैवयोग से स्वयम्बर स्थली में पधारे थे। यहाँ कुमार सिद्धार्थ किसी अदृश्य प्रेरणा से नहीं, दृश्य प्रेरणा से पधारेंगे। जिस प्रकार जनकजी ने प्रण किया था उसी प्रकार महाराज सुप्रबुद्ध ने भी।

सभी प्रजा प्रतियोगिता-क्षेत्र में एकत्रित, आगन्तुकों सहित महाराज के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। किसी ने आकर सूचना दी कि महाराज का प्रासाद से प्रस्थान हो चुका है कुछ ही काल के अन्तर से वे यहाँ पधार रहे हैं। महाराज

के प्रस्थान की सूचना सुनते ही जनता के सोए कौतूहल जाग पड़े। उनके सर उठ गए। जनता में सन्तोष सिहरन फैल गई। हर्ष की एक हलकी गीत-धारा इस ओर से उस ओर बह गई। सभी के नेत्र, जिनमें प्रसन्नता तथा व्यग्रता दोनों का अद्भुत सामंजस्य था, प्रासाद से आने वाले मार्ग की ओर घूम गए। वे आगन्तुक राजाओं के मध्य आ रहे थे। जनता ने उनकी जय-जयकार से आकाश के कानों को बधिर कर देने की ठान ली थी। जैसे-जैसे उनकी सवारी पास आती जा रही थी वैसे ही वैसे हर्ष-ज्वार और भी उत्ताल होता जा रहा था। जय-जयकार के मध्य महाराज तथा अन्य राजाओं ने आसन ग्रहण किए। उनके हाथ उठाते ही जय-जयकार की कोलाहलपूर्ण-ध्वनि इस प्रकार शान्त हो गई जैसे ब्रह्मा के संकेत से प्रलयंकारी उत्ताल तरंगें।

अमात्य ने आसन से उठकर आज के एकत्रित होने का कारण घोषित किया। प्रतियोगियों को जनता के समय आने का आदेश सुनाया गया। सभी प्रतिद्वन्द्वी अपने-अपने अश्वोंपर चढ़कर जनता के मध्य आए। उसने अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वियों के विषय में परस्पर विचार प्रगट करना प्रारम्भ कर दिया। कुमार सिद्धार्थ कन्तक की पीठ पर थे। जब वे अपने अश्व पर सवार होकर जनता के सम्मुख आए तो उनके नेत्र समुदाय-वीचि पर तिरते-तिरते एक स्थान पर ठहर गए। किसी ने अपनी व्यग्रता तथा खंजनों की चंचलता छिपाने के हेतु

अकारण ही भूमि की ओर देखना प्रारम्भ किया। जब खंजनों की व्यग्रता, शरीर न संभाल सका तो वह पैर के अँगूठे से भूमि को कुरेदने लगी। लालिमा की लजीली, हलकी सी लहर उसके चेहरे पर आई और चली गई।

सर्व प्रथम धनुर्विद्या की प्रतियोगिता का प्रस्ताव हुआ। सिद्धार्थ ने घोषित किया—

"जो प्रतिद्वन्दी प्रतियोगिता में मुझसे आगे आना चाहते हैं वे धनुर्विद्या के अपने-अपने शिल्प दिखलावें।" इतना सुनना था कि सभी प्रतिद्वन्द्वी अपना-अपना जौहर दिखलाने आगे आए। सभी प्रतिद्वन्द्वियों से दूर सिद्धार्थ ने अपना लक्ष्य स्थापित कराया। सभी में काना-फूसी हुई। सागर विक्षुब्ध हो उठा। सभी ने बारी-बारी ने अपने-अपने लक्ष्य-भेदन किए। अब कुमार की लक्ष्य-भेदन की बारी आई। उन्होंने अपना धनुष-टंकोरा। उस पर बाण चढ़ा, उनके बाण चढ़ाते ही लोगों के श्वासों के कौतूहल, ठिठककर जहाँ के तहाँ रह गए। कुमार ने धनुष की प्रत्यंचा को उस सीमा तक ताना जिस तक उसके दोनों छोर एक स्थान पर आकर मिल गए। भीत हरिणी सम नेत्रों ने अपने को आँचल में छिपा लिया कि कहीं किसी के प्रियतम की असफलता न देखनी पड़ जाय!— कुमार ने कहा—"इस धनुष से लक्ष्य भेदन नहीं हो सकता। यह सर्वथा इसके अनुपयुक्त है। मुझे लक्ष्य-भेदन के हेतु कोई दूसरा धनुष लाकर दिया जाय।"

उनकी माँग सुनते ही सम्पूर्ण एकत्रित समाज सन्नाटे में आगया। बहुतों के मुख से हठात् प्रशंसा फूट पड़ी। ऐसा वीर योधा आज तक किसी ने भी न देखा था। कुमार जैसे-जैसे एक के बाद दूसरा धनुष अनुपयुक्त ठहराते जाते थे वैसे ही वैसे उपस्थित व्यक्तियों के आश्चर्य-चक्षु उतने ही अधिक खुलते चले जाते थे। महाराज—सुप्रबुद्ध लज्जा से गड़े जा रहे थे। उन्हें अपने उन वाक्यों पर पछतावा हो रहा था, जोउन्होंने—पुरोहित से वार्तालाप करते समय कहे थे। जब कोई भी धनुष उनके उपयुक्त न प्राप्त हो सका तो सभी विचलित हो उठे। अमात्य ने महाराज से कहा—"महाराज! अब अवसर है कुमार की सर्वांश परीक्षा का। महाराज सिंह-हनु का लौह-धनुष कुमार के लक्ष्य-भेदन के हेतु आना चाहिए।"

इस समय कोई पढ़ सकता तो स्पष्ट ही महाराज की मुख-मुद्रा से अवसाद के भाव पढ़ सकता था। इन भावों को लज्जा का झीना सा आवरण अपने में छिपाने का व्यर्थ सा प्रयत्न कर रहा था। गोपा ने अपने पिता के भाव को पढ़ लिया। उसका हृदय गर्वानुभूति का पारावार बन गया। उन्होंने केवल संकेत से ही उसके लाने की आज्ञा दे दी। धनुष लाया गया। लोगों का कौतूहल नेत्रों में उतर आया। नेत्र एक दिशा में बँधकर रह गए। गम्भीर-नाद की एक हलकी सी लहर जनार्णव के एक कोने से उठी और दूसरे

कोने पर जाकर समाप्त हो गई। यह क्या—कोई साधारण धनुष है जो आयास-साध्य हो जाएगा ? इस धनुष को टंकोरना तो दूर की बात, इसकी प्रत्यंचा चढ़ जाय तो बहुत समझिए। इतने हृदयों के मध्य एक हृदय ऐसा भी था जो कुमार की सफलता की कामना कर रहा था। वह अपने भाग्य-देवता के चरणों में मनसा पुष्प चढ़ा रहा था। एक साथ ही न जाने कितने कोमल भावों का उद्वेलन हुआ। न जाने भावों के कितने मेले लगे और उठ गए। आश्चर्य ! प्रत्यंचा चढ़ गई। सभा हर्षमयी आश्चर्य में डूबी वाणी से सिहर उठी। कुछ के मुख से हठात् निकल गया—"वाह !" किसी ने दाँतों तले ऊँगली दबाई, तो किसी ने होठ काटे। धनुष को उन्होंने कान तक ताना तो पृथ्वी डोल उठी। दिशि-कुंजर चौंक गए वे इसके निदान पर सोचते-सोचते थकित हो गए थे। वाण प्रत्यंचा से छूट गया। लक्ष्य भेदन-क्रिया सम्पन्न हो गई। घोर-रव गगन में गूँज गया। यशोधरा आसन से भूमि पर गिर गई। सभा में उपस्थित अधिकांश व्यक्ति संज्ञा शून्य से हो गए। कोई किसी के ऊपर, तो कोई किसी के ऊपर गिर पड़ा। जब सभा स्वस्थ हुई तो उन्होंने लक्ष्य को बिद्ध पाया। यह देख हर्ष के कंठ फूट पड़े, प्रसन्नता करतल ध्वनि कर उठी। प्रकृति भीत हो गई और प्रतिद्वन्द्विता हत प्रभ। कलिका ने जागरण का घोर रव सुना और वह विकसित हो उठी।

दूसरी प्रतियोगिता खड्ग-परीक्षा थी। इस परीक्षा में किसी कुमार ने सूक्ष्म तो किसी ने स्थूल और किसी ने उससे भी स्थूल लक्ष्य का भेदन किया पर इन सभी प्रतियोगियों से अधिक स्थूल लक्ष्य का भेदन कुमार ने किया। लक्ष्य कटकर अपनी प्राकृतावस्था में रहा। सभा शंकित हो उठी। यशोधरा पर तो घड़ों पानी पड़ गया। उसके गर्व का मस्तक झुक गया पर कुमार आश्चर्य है! वे सहज भाव से खड़े-खड़े मुस्करा रहे थे। इस वैपरीत्य को लख जनता में असंतोष फैलने लगा। ये असंयमित होने लगे। वायुदेव यह देख रहे थे। जब सभा में गहरा असंयम भासित होने लगा तो उन्होंने अपने को गतिमान् किया। उनके हलके प्रहार ने लक्ष्य के खण्ड को पृथक् कर दिया। आश्चर्य! मानव ही नहीं जड़, चेतन और आकाशादि भी चकित रह गए। उनकी बुद्धि ठग गई। कल्पना के तन्तु शिथिल पड़ गए। पृथ्वी में भीत कम्पन हुआ।

तृतीय प्रतियोगिता अश्वारोहण थी। एक हृष्ट-पुष्ट, उन्नत मस्तक, काला, शृंखलित अश्व, जिसके अंग-अंगसे उच्छृङ्खलता टपक रही थी, प्रतिद्वन्द्वियों के समक्ष लाया गया। घोषणा हुई—"जो प्रतिद्वन्द्वी इस अश्व की पीठ पर सवार होने में समर्थ होगा वह इसमें प्रथम घोषित किया जायगा। जयमाला का वही भाग्यवान् अधिकारी होगा।"

गोपा अश्व के भयंकर स्वभाव से परिचित थी। अनजाने ही उसकी मुखकान्ति मन्द पड़ गई। कलिका मुरझा गई।

उसने मन में किसी का ध्यान किया। उसने किसी से कुछ माँगा। इधर जनता ने कण्ठ में निर्णय भर कर कहा—"इस प्रतियोगिता में कुमार सिद्धार्थ तो क्या, उनसे भी अधिक शौर्य सम्पन्न प्रतियोगी भी आ जाय तो भी इस अश्व पर सवार नहीं हो सकता है।"

एक-एक कर सभी प्रतियोगी अश्वारोहण के लिए आए। उसकी पीठ पर सवार होना तो दूर की बात, उसने तो किसी प्रतियोगी को अपने पास तक नहीं आने दिया। अब कुमार की बारी आई। कुमार ने पहले अश्व की परिस्थिति का अनुभव किया। उन्होंने उस कारण को दूर किया। वह सवार की परछाहीं देख लेता था अतः किसी को पीठ पर सवार नहीं होने देता था। अब समस्या सुलभ हो गई। वे उसकी पीठ पर सवार हो गए। आश्चर्य-मूर्त हो गया। कल्पना को अपना चरम प्राप्त हो गया। उन्होंने घोड़े को सर-पट दौड़ाना प्रारम्भ किया। अश्व को आज ही तो आरोही मिला, जिसने उसे इतना भगाया कि वह अपनी सब चौकड़ी भूल गया। हार मान गया। कुमार जब तक उसकी पीठ पर सवार रहे तब तक लोगों पर यह भय छाया रहा कि वह कुमार को कहीं गिरा न दे। जब वे उसकी पीठ से विजयी हो प्रसन्न बदन उतरे तो सभा में आह्लाद की एक अनिर्वचनीय लहर सी दौड़ गई। उनके हृदयों का भय जाता रहा। इस समय यदि कोई यशोधरा की मुख-मुद्रा को देखता तो वह

उस पर गर्व का स्पष्ट अंकन पाता। उसने सबसे आँखें चुराकर उसी गर्व-मुद्रा में कुमार को देखा और कुमार ने उसे। उनकी मुद्रा भी विजय-गर्व-गरिमा से बोझिल थी। कौन किसकी हृदयनिधि है? नेत्रों ने नेत्रों को समझाया। सभी की आँखों में श्रद्धा और प्रेम झलक आया। महाराज ने भी उनको लोचनों से देखा, उनको लोचनों में भर लेना चाहा। उनके लोचनों में प्रेम झलक आया। धड़कनों की ताल पर संयोग ने गीत छेड़ा। यशोधरा अब उनकी ओर सहज ही देखने का साहस नहीं कर पाती थी। न जाने कितने संघर्षों के उपरान्त वह उनकी ओर ताकने का साहस कर पाती! कितनी बार देर तक निहार लेने का, लोचनों में भर लेने का मन में दृढ़ संकल्प करती पर साहस का साहस छूट जाता था। धैर्य अपनी सीमा छोड़ देता था। वह विपल भी उनकी ओर न निहार पाती थी। एक विपल की ही मधुर-सृष्टि को अपनी हृदय झोली में सँभालने में असमर्थ रहती। इससे पूर्व वह चोरी चुपके अपने पलकों में उन्हें छिपाने का कई बार प्रयत्न कर चुकी थी पर अब! अब कितनी अद्‌भुत् परिस्थिति थी। वे जब दूर थे तो उन्हें पास बुलाने की प्रार्थना होती, और जब वे पास आ गए तब ये नेत्र धोखा देने लगे। ये उनकी ओर उठते ही नहीं। रस की इतनी अरसिकता यह रोग ही विचित्र है। कौन किसका हुआ है भला, जो नेत्र उसके होते। नेत्रों से आश्वस्त हो उसने

किसी का आह्वान किया, पर जब आहृत-मूर्त्ति आ गई तो वे अपने न रह सके। मादकता की बाढ़ में ठहर न सके, बह गए।

महाराज ने अमात्य को स्वयम्बर का फल घोषित करने की आज्ञा दी। कुमार सिद्धार्थ को प्रथम घोषित किया। वायु का झोका आया, गुलाब का फूल खिली कलिका की ओर झुका और उसके कानों में कुछ कह गया। वह खिल उठी। प्रणय की वायु डोली। प्रेम का हार सजा। उसे लेकर जब वह आसन से उठी तो ऐसा लगा मानों मधुरिमा ही साकार हो उठी हो। उनके एक पग चलने से धरती पर कोमलतम कविता रच गई। अनन्त रचनायें मचल उठीं। साकार रति-बसंत श्री के मध्य चल रही थी। कभी-कभी उसके हठीले, रतनारे नेत्र चोरी कर लेते थे। जैसे-जैसे वह कुमार के समीप आती गई वैसे ही वैसे उसकी दृष्टि स्वतः झुकती चली गई। सौन्दर्य-गरिमा वहन करने में असमर्थ पैरों की गति एक मदिर व्यक्ति के पैरों की सी हो रही थी। वहाँ तक पहुँचना भारी हो रहा था। अरी! बावली। अभी तो मादक-रचना के ये प्रथम चरण हैं, इन्होंने तेरी यह दशा कर दी?...........एक सखी ने उसका आँचल सम्हालने के मिस उसको सचेत कर दिया। निधि-सागर में अपने हृदय-हार को अर्पित कर दे! हार-मण्डित काम की दो सुकुमार रचनायें आगे बढ़ीं। नयनों से नयन मिले। चषक में चषक

ढले। मदिरा में मदिरा। यौवन में यौवन ढला। अरमानों के द्वार खुले। रचनायें कुछ चलकर ठिठक गईं। नयनों के भाव झुक गए। मौन भाषा में रचनायें मुखरित हो उठीं—"तुम भी कुछ आगे बढ़ो। मिलन का आनन्द इसी में निहित है। भाषा ने भाव पाए। ग्रीवा में लोच आया। हार मिस मनुहार आई। कोयल ने कण्ठ खोला, यौवन का ज्वार चला। शहनाई में हर्ष बोला। धमनियों में प्रसन्नता की कम्पन का अनुभव हुआ। उत्सव समाप्त हुआ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

'परिणय'

परिणय समाज-व्यवस्था की सृष्टि है वह भावुकता की सृष्टि नहीं। यदि इसमें भावुकता की रक्षा हो जाती है तो स्वर्ण में सुगन्ध आने लगती है। कुमार को उनकी भावानुरूप साथी मिला। प्रतियोगिता के विजयी दिवस से लेकर बारात जाने तक का अन्तर अपने में न जाने कितने युग और कितने कल्प की सृष्टि कर लाती है। जीवन के क्षण उसमें विस्तार पा जाते हैं। व्यग्रता धैर्य से वैर ठान लेती है। मन पागल हो जाता है। कल्पना सुख-स्वप्नों के प्रासाद रचकर उनमें भाव-मूर्तियों की स्थापना करती है। अनुराग की शून्य क्रोड़ में स्वप्निल सृष्टि कुलबुलाने लगती है। ये सब सृष्टियाँ परिणय के विशुद्ध मन्त्रों से पालित-पोषित हो यौवनावस्था प्राप्त करती हैं जिसमें प्रेम की शीतल ज्योत्स्ना का राज्य बना रहता है।

इसमें दोनों हृदय सदा सदा के हेतु एक हो जाते हैं। उनका गठबन्धन हो जाता है।

महाराज शुद्धोदन ने विजयी कुमार का अपनी राज्य सीमा पर बड़े धूमधाम से स्वागत किया। उस दिन समग्र कपिल-वस्तु उत्सवों के हाथ का खिलौना हो गयी। खुशी दिवाली में साकार हो उठी। कुछ ही दिन आनन्द में व्यतीत हो पाये थे कि उन्हें देवदह से संदेश प्राप्त हुआ। पड़ोसी राजाओं को निमन्त्रण दिए गये। सभी बारात के हेतु आये। प्रसन्नता के पाहुने सज उठे। कुमार की शोभा वर्णनातीत थी। ब्रह्मा ने उनको सजाने के लिये विश्वकर्मा को भेजा था। उस हाथी की शोभा भी अवर्णनीय थी जिस पर कुमार स्वयं विराज रहे थे। प्रसन्नता की वीथियाँ और आनन्द की अमराइयाँ सज उठीं। बारात चलने के सभी सामान हो चुके थे। चलने के समय दरिद्रों को इतना दान दिया गया कि कोई दरिद्र न रह गया था। पृथ्वी में पुलक की प्रतीति हुई। वह कोमल-गात्रा हो गई। बारात ने देवदह की ओर प्रस्थान किया। उधर देवदह में भी किसी के हृदय में भी इस प्रकार की बारात सज गई होगी और उसने मिलन के हेतु वहाँ से प्रस्थान भी कर दिया होगा। मार्ग में बाराती प्रसन्नता की सरिता बहाते चल रहे थे। अश्वों को भी उनका भाग देते चल रहे थे। अश्वारोही नाना भाँति से अश्व को नृत्य कराते चल रहे थे। सब अपनी अपनी मंडली बनाकर चल रहे थे।

विनोद की धारा में बहते उन्हें मार्ग का श्रम न व्यापा और न ही वे यह जान पाए कि उन्होंने कितना मार्ग तय कर लिया। सिद्धार्थ के सखा उनके आस-पास अपने-अपने हाथों और तुरङ्ग लगाये हुए चल रहे थे। सम्पूर्ण वरयात्रा-समाज विनोद-विनिमज्जित था। मार्ग के ग्रामीण उसे देखने के लिए चलते-चलते खड़े हो जाते थे। ग्राम-बधूटियाँ वर देखने के हेतु घूँघट से मुख निकालतीं और वर को एक झलक देख कर दाड़िम-पंक्ति चमकातीं पुनः घूँघट में अपने मुखचन्द्र को छिपा लेती थीं। कोई-कोई धृष्टाएँ तो उनकी ओर टकटकी बाँधकर देखती रह जाती थीं। उन्हें यह भी भान नहीं रहता था कि उनकी ओर कितने व्यक्ति लोभ-दृष्टि फेंक रहे हैं। ग्राम की नवयुवतियाँ भी वर को देखने में भला क्यों किसी से पीछे रह जायँ ? वे भी आगे बढ़-बढ़कर उन्हें, नेत्रों में कुछ भरकर, देखतीं। ये नवयुवक मंडली के लिए विशेष आकर्षण प्रमाणित होतीं। ग्राम की नवयुवक मण्डली भी कुमार की शोभा को देखकर अपनी चौकड़ी भूल जाती थी। वर यात्रा की शोभा अवर्णनीय थी। यही नहीं, प्रत्येक ग्रामवासी अपने महाराज के हेतु पहले ही से उनके स्वागतार्थ मार्गों को स्वच्छ कर रखते थे। कुलबधुएँ महाराज तथा कुमार का पुष्प-वृष्टि से स्वागत करती थीं। गाँव के गणयमान्य मिलकर महाराज के समीप जाते और प्रेम के साथ उनसे कहते— "राजन् ! हम अभागे आपके दर्शन पाकर कृतार्थ हुए। हम

आपके हेतु यथोचित स्वागत साज सजाने में असमर्थ रहे। इसके लिये हम अधिक लज्जित हैं।"

प्रजाजन की प्रेमाभिषिक्त वाणी सुनकर उनका हृदय गद्गद् हो जाता था। वे उन्हें अनेक प्रकार की रञ्जनकारी वाणी में समझाते थे। प्रजा भी पुलकित मन और हर्षित तन उनकी जयजयकार मनाती, अपने भाग्य सराहती लौट आती थी। वर-यात्रा की सवारी जिस जिस गाँव से निकली उस उस गाँव में उनका भव्य स्वागत होता। महाराज प्रजा के प्रेम को देख कभी-कभी नेत्रों में हर्षाश्रु भर लाते थे। अन्य राजागण प्रजा की सहृदयता लख महाराज की प्रशंसा करते न अघाते थे।

कुमार का मन वर-यात्रा की परिधि पार कर देवदह के प्रासाद में बैठे किसी हृदय के विषय में सोचने लगता था। उस समय उनके मार्ग में उनके सखाओं की विनोदुक्तियाँ बाधा नहीं डाल पाती थीं। उनका मन स्मृति की गहराइयों से कभी विगत कालीन रत्न खोज लाता तो कभी हाल का। मन की असम्बद्ध खोज इस प्रकार चल रही थीः—"इस समय यशोधरा मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। वह भी मेरी ही भाँति सोच रही होगी। उससे उसकी सहेलियाँ विनोद कर रही होंगी जिस प्रकार मेरे साथ ये सखा। यशोधरे! तुम मेरे विषय में क्या सोच रही होगी?··· तुम सोच रही होगी कि मैंने कुमार को उत्सव में किस प्रकार विजित कर लिया था। किस प्रकार अपनी दक्षता से उनसे

बात करने में सफल हो सकी थी ! किस प्रकार उनकी व्यग्रता से मैंने विनोद-मुद्रा में अपने को खो दिया था। इतने ही में तुम्हारी सहेलियाँ तुम्हें गुदगुदा देती होंगी और हँसी की भाषा में पूँछती होंगी—कहो ! राजकुमारी !! वह कौन भाग्यवान् है जिसकी याद में तुम खोई हुई हो। तभी तुम किसी का गाल और किसी का कान मसल देती होंगी। वे पुनः तुम्हारे प्रस्तुत विषय को लेकर परस्पर ही उत्तर-प्रत्युत्तर में निरत हो जाया करती होंगी। तुम्हें पुनः मेरे विषय में सोचने का अवसर मिल जाता होगा। तुम सोचती होगी कि मैं प्रतियोगिता में किस-किस प्रकार अपने शिल्प दिखा सका। तुम यह भी सोचती होगी कि कुमार तुम—इस प्रतियोगिता में कदापि विजय प्राप्त न कर सकते यदि मैं तुम्हारी प्रेरणा बनकर तुममें न समाती। यदि मैंने तुम्हारी विजय कामना न की होती ! यदि मैंने अपने इष्ट को न मनाया होता ! खैर ! राजकुमारी ! तुम कुछ भी सोचो पर मैं तुम्हारी वह छबि नहीं भुला सकता जब तुम मुझे वरमाला पहनाने आई थीं। मैं कितनी मधुर स्मृतियों से अपने हृदय को सजाऊँ। किसको कहाँ पर रखूँ जिससे वह अधिक शोभा दे सके। मैं इसी समस्या में उलझकर रह जाता हूँ। अधिक कुछ सोच ही न पाता हूँ............"

इस प्रकार कुमार कुछ क्षणों के लिए अपने में खो जाते थे। विनोद की बौछार उनकी विचार-मुद्रा में बाधा डाल

देती थी। वर यात्रा की सवारी आवश्यक विश्राम-स्थलों पर ठहरती हुई जा रही थी। किसी को यह अनुभव नहीं हो रहा था कि वह यात्रा पर निकला हुआ है। ऋतु ने भी उस समय अपनी सर्वश्रेष्ठ काया उपस्थित की। अन्त में सवारी अपने गन्तव्य पर पहुँच गई। उसका पहुँचने का समय दोपहर के बाद का था। महाराज सुप्रबुद्ध उसके स्वागत के हेतु प्रस्तुत ही बैठे थे। सम्पूर्ण नगर में बारात के आने की सूचना विद्युत्-वेग सी फैल गई। सभी नगरवासी बारात देखने दौड़ पड़े। महाराज ने बारात का स्वागत किया, समधी, समधी से मिले। प्रेम-पारावार में उफान आया। आलिंगन में उसका परीवाह हुआ। सभी बारातियों ने महाराज सुप्रबुद्ध की उदारता एवं सहृदयता का अनुभव किया। नगर के नर-नारी, आबाल-वृद्ध, सभी वर देखने गए। वर की श्री का वर्णन होना कठिन था। वहाँ पर गिरा नेत्र हीन हो जाती थी और नेत्र गिरा हीन। किंचिद् काल ही में वर के सौन्दर्य की सूचना घर-घर पहुँच गई। वर-यात्रा नगर के राजमार्गों से जा रही थी। स्वर्गनिभ सजी देवदह, बारातियों का ध्यान आकर्षित कर रही थीं। छज्जों पर दोनों ओर नगर बधूटियाँ पुष्प-वृष्टि कर रही थीं। मङ्गल-गान गा रही थीं। जगह-जगह पर तोरण-सज्जित मङ्गलद्वार बनाए गये थे। प्रत्येक द्वार, प्रत्येक दूकान मङ्गल चिह्नों से चिह्नित थी। हर्ष का अपार पारावार, आनन्द का उत्ताल ज्वार सम्पूर्ण देवदह को डुबो

गया। वे उसी के वारि से संज्ञा-शून्य थे। उस नगरी की बाल-मण्डली कुमार के दूर-दूर हाथी के आसपास चल रही थी। सवारी प्रासाद पर आकर रुकी। परिछन के हेतु महारानी नगर सेठ की बधुओं के मध्य थाल सजाकर कुमार के हाथी के सामने आईं। फीलवान ने हाथी बैठा दिया। कुमार के सौन्दर्य को निरख वे सौन्दर्य पारावार में डूबने-उतराने लगीं। उन्होंने मन-ही-मन वर की मङ्गल कामना की। यशोधरा के भाग्य को सराहा। जिसका जैसा पुण्य होता है उसको वैसा ही वर प्राप्त होता है। यशोधरा के विगत जन्म का पुण्य महान् था इसीलिए उसे काम से भी शतगुण शोभा-शाली वर प्राप्त हुआ है। जिसने कुमार को देखा उसने उसके भाग्य को सराहा। परिछन क्रिया सम्पन्न होने के बाद महाराज ने उन्हें जनवासा दिया। उनका प्रबन्ध इतना अच्छा था कि उन्होंने प्रत्येक वरयात्री की सेवा में दो-दो सेवक नियुक्त कर दिए। किसी को अपनी आवश्यकता प्रकट करने में भले ही देर हो जाती थी पर उसके पूरी होने में कदाचित् ही उतनी देर लगती थी। उनकी आवभगत से प्रत्येक वर-यात्री परम सन्तुष्ट रहा। उनके प्रबन्ध में त्रुटि को खोजने से भी कहीं त्रुटि न मिलती थी। बाजार की जिस दूकान से जिस बाराती को जो वस्तु भाती थी वह उसे ले लेता था। दूकानदार उसका मूल्य नहीं लेता था। इस प्रकार बाराती को कहीं भी किसी इच्छा-पूर्त्ति में देर न लगती थी। उसके

मन में इच्छा का प्रादुर्भाव होना चाहिए, फिर उसके फलित होने में आधे पल की भी देर नहीं।

बारात की प्रत्येक रीति इतने सुचारु रूप से हुई कि सूचना को भी किसी की सूचना न हो पाई। चारो ओर सद्भावनाओं का ही राज्य फैला हुआ था। मनोमालिन्य की वहाँ से छाया तक छूकर न निकल गई थी। सारी विधियाँ मङ्गल-भावों के साथ समाप्त हुईं। महाराज शुद्धोदन ने उनके याचकों और नेगियों को मुँह-माँगे नेग दिए। कुबेर का भण्डार खुल गया। दरिद्रता मुँह छिपाकर वहाँ से पलायमान कर गई थी।

विदा का प्रश्न उपस्थित होते ही प्रेम आगे आकर उसे टाल देता था। प्रेम की डोर कैसे तोड़ी जा सकती थी? आजकल करते करते उन्हें लगभग वहाँ एक मास व्यतीत होने को आ गया। प्रेमनिद्रा टूटी और वे जागे। हृदय से बलात्कार किया और इस प्रकार बहुत कठिनाई के बाद वियोग की घड़ी आगई। छकड़ों में दहेज भर कर दिया। सहस्रों कहार नाना व्यञ्जनों की बँहगी लिए चल रहे थे। चलते समय यशोधरा की माँ ने उसे बहुत भाँति सदुपदेश देकर उसे बिदा किया। बिदाई का दृश्य बहुत ही करुणोत्पादक था। जिस घर में उसका बचपन पलकर किशोर हुआ और जिसने वहीं पर युवावस्था प्राप्त की, जिस माँ की गोद में खेली, जिस पिता की वात्सल्य छाया में पली, उसको आज

कोई दूर देश से आया और उसके सगे-सम्बन्धियों से छीन-कर ले चला। बन्धन रोते रहे, घुटते रहे, उसको क्या। रोता रहे कोई उसके लिए। यह तो संसार है, स्वार्थ का संसार। जहाँ स्वार्थ की ही खेती होती है। जहाँ स्वार्थ ही ओढ़ा और बिछाया जाता है। इसमें यदि मनुष्य की एक आँख रोती है तो दूसरी को हँसना पड़ता है। यह है सृष्टि का स्वार्थ जिस स्वार्थ को इतना कठोर होना पड़ता है कि वह शत-शत अश्रुविन्दुओं में भी नहीं गलता। यह तो सृष्टि का विधान है, उसका अटल नियम है। कितना मोहक और दुःखमय है यह संसार! किसी का संसार बसा तो किसी का घर सूना हो गया। किसी के आँचल से दुग्ध की धार फूट पड़ी तो किसी का वात्सल्य अश्रुसरिता बहाने लगा। यह संसार चक्र है जो चलता रहता है। संसार द्वन्द्व की झाँकी है।

महाराज सुप्रबुद्ध प्रेम-रज्जु में बँधे बहुत दूर निकल आए। महाराज शुद्धोदन उन्हें बार बार लौटाते पर वे बार-बार फिर आते थे। अद्भुत है यह प्रेम-व्यवहार! अन्त में वे बेटी से मिल, आँसुओं की भेंट ले लौट ही आए। दान में उन्होंने बहुत से दास और दासियाँ भी दी थीं। महाराज शुद्धोदन ने दो दूत बुलाए और उन्हें तीव्रगामी तुरङ्गों से कपिलवस्तु सूचना देकर भेजा। बारात आ रही है। पुत्र-बधू के स्वाग-तार्थ उचित साज सजाए जायँ।

बारहवाँ परिच्छेद

प्रणय-केलि (१)

यशोधरा ने कुमार को कई बार विचार-मग्न पाया तो उनकी इस दशा में उसने परिवर्त्तन लाने का प्रयत्न किया। वह उनके पास जाती और पीठ पर हाथ रखकर प्यार से कहा करती—"आर्य पुत्र! दासी को अकेले सड़ने के लिए छोड़कर एकान्त सेवन के लिए चोरी-चोरी क्यों चले आते हैं? आपके बिना तो मुझे एक क्षण भी एक युग के समान दीर्घ हो जाता है।" इतना कहकर वह मन्द-मन्द मुस्कराने लगती थी। वे भी अपनी मानसिक परिस्थिति को छिपाते हुए और उसको प्रसन्न करने के लिए उसके प्रत्युत्तर में मुस्कराने लगते थे। यशोधरा हर बार उनकी मानसिक परिस्थिति में परिवर्त्तन बनकर आती और अनुकूलता बनकर समा जाती। वह उनके पीछे छाया की भाँति लगी रहती थी। वे कहते—

"देवि ! मैं तुम्हारे ही विषय को लेकर विचार कर रहा था। तुम मेरे मानस-जगत् की राजहंसिनी हो। तुम मेरे तन, मन और प्राणों पर छाई हुई हो।" वास्तव में वे स्त्री के मोहक रूप पर विचार करते। शरीर जो पंच-स्कन्धों का समीकरण है उसके पृथक्-पृथक् कारणों पर वे विचार करते। वे यह भी अनुभव करते कि वे मार्ग से कुछ दूर जा पड़े हैं। वे उस मार्ग से इधर-उधर हो गये हैं। मानव-कल्याण के विचार यौवन-मदिरा की सुनहली धारा में बह गए हैं। कंचन और कामिनी उन्हें क्षण भर का भी अवकाश नहीं देती, जो वे अपने पूर्व विचारों पर एक दृष्टिपात भी कर सकते। वे उससे अवकाश भी किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं? वे उसे किस प्रकार त्यागने की बात सोच सकते हैं? कुमार ने अपने को सुनहले जाल में फँसा हुआ पाया। वे उसमें से जितना भी निकलने का प्रयास करते उतने ही उसमें उलझ जाते थे। हाँ ! अभी वे साधारण जन की भाँति अपने में यह नहीं भर पाए थे कि गृहस्थ-जीवन ही मनुष्य-जीवन का चरम है।

एक दिन सन्ध्या से कुछ पहले, जब दिनकर की किरणें अस्ताचलगामिनी हो रही थीं, पक्षीगण आकाश मार्ग से कलरव करते हुए अपने नीड़ों की ओर जा रहे थे। उस समय कुमार अपनी वाटिका में ध्यानमग्न थे। प्रथम दाम्पत्य-जीवन की बहुत-सी मधुरतम स्मृतियों में से उनके विचार-जगत् में एक स्मृति प्रवेश कर गई जिसने उनकी मानस-धरा पर

सुधावृष्टि कर दी। शनैः-शनै मधु क्षरण मन्द पड़ा और विचारों का प्राधान्य आया। वे इस प्रकार सोचने लगेः—

"एक दिन यशोधरा चुपके से मेरे पीछे आकर खड़ी हो गई और मेरी आँखें अपनी कोमल हथेलियों से बन्द कर लीं। मैंने चोर को पहचानने के लिए पीछे हाथ बढ़ाया। संयोगवश मेरा हाथ उसके मुँह में पड़ा। उसने न आव देखा न ताव, मेरा हाथ काट लिया। एक हल्की पीड़ा मिश्रित सीत्कार मेरे मुख से निकल गई। उसने मेरी सीत्कार में पीड़ा का आभास पाया और वह व्यग्र हो उठी। वह उस समय इतनी व्यग्र हो उठी थी कि मानों कोई बहुत ही अप्रिय घटना घट गई थी। उसने झट आँखों से हाथ हटाकर मेरे उस काटे हुए हाथ को अपने हाथ में ले मुँह की फूँक से पीड़ा का उपचार करने लगी। अपनी प्रियतमा की इस व्यग्र मुद्रा में मैंने विनोद की झलक पाई और मैं मन्द-मन्द मुस्कराने लगा। मैंने कहा—"बस! इतनी सी बात पर इतनी घबराहट। स्त्री! तू कितनी सरल-हृदया होती है कि झट बहकावे में आ जाती है।"

"किसी के प्राण कण्ठ में आ जायँ और आप विनोद करें!" इतना कहकर मानिनी! मान कर बैठी। मैं स्वयं सरल हृदय! भला इतनी तीव्र वायु में कहाँ टिक सकता था! मुझे यह अच्छा न लगा। अनावश्यक किसी की भावनाओं को दुख पहुँचाऊँ यह मुझे न भाया। मैं उस

समय इस विचार को लेकर कितना अशान्त हो उठा था। मैं अपनी प्राणेश्वरी को मनाने चला। चूँकि मैं पहले ही सहम गया था, अतः कुछ दूर उसके निकट पहुँचकर मैं रुक गया और धीमे से सहमते हुए स्वर में मैंने कहा—"प्राणेश्वरी! क्या रूठ गईं?" पर उसको वह सुनकर न तनिक भी हिलीं और न डोलीं ही। उसने उस समय ऐसा भाव प्रदर्शित किया था मानों उसने उस वाक्य को बिलकुल सुना ही न था। वह मूर्ति सी अचल बैठी रही। मैं यह सोचकर उसके और पास गया कि शायद मेरी आवाज उस तक न पहुँची हो और अपने हृदय की दुर्बलता को मैंने इस प्रकार व्यक्त किया—"प्राणवल्लभे! मैं इतने भयङ्कर परिणाम की आशा न कर रहा था। क्या मेरे लिए इसके अतिरिक्त अन्य कोई दण्डविधान नहीं था? मैं अब ऐसा विनोद कभी न करूँगा। आर्य सुमुखि! इस बार तुम प्रसन्न हो जाओ, भविष्य में मैं कभी ऐसा कार्य न करूँगा जिससे कि तुम्हें किसी प्रकार का दुःख पहुँचे। तुम्हारी यह मुद्रा मेरा दम घोंटे डाल रही है। दया-दृष्टिकर अब यह मुद्रा त्याग दो, नहीं तो मेरा हृदय भग्न हो जायगा।" मेरी दीनोक्ति ने उसके हृदय में हलचल पैदा कर दी। एक ओर उसका हृदय मेरी दशा पर तरस खाना चाहता था तो दूसरी ओर वह मुझे अपने रूप-पाश में बद्ध जानकर मन ही मन प्रसन्न हो रही थी। उससे मुक्त होने के लिए मैं जितनी उछल कूद

करता था, उतना ही उसमें फँसता जा रहा था। आखेटिका का भाव मन में लिए वह मुझे जितना ही बद्ध हुआ देखती, उतनी ही उसकी प्रसन्नता अन्तर-प्राँगण से विकास पाती हुई अधराँगण में थिरक-थिरक कर केलि करने में निरत हो जाती।

मेरी यह अभ्यर्थना भी जब प्रभावहीन हो गई तो उसके अन्तर की हलचल ने कुछ अधिक गति ग्रहण की। धैर्य ने लगभग उसका साथ त्याग दिया। हमारी मिलन बेला आ गई। मैंने आगे बढ़कर स्वर में अधिक दैन्य भरकर पुनः अभ्यर्थना का श्रीगणेश किया। स्पर्शानुभव ने उसके अंग में गति पाई। यह आनन्दजनित थिरकन थी। मुझे थिरकन की आत्मा प्राप्त हो गई। यह प्रसन्नता की पुलकन थी। प्रसन्नता भावों की सम्पत्ति है। भावों का सम्बन्ध घटित घटना से होता है। जब उस थिरकन में मुझे प्रसन्नता का आभास मिला तो चुम्बक ने मुझे और आकर्षित किया। उसने नहीं चाहते हुए भी और अधिक रूठने का भाव दर्शाया। कुछ और आगे खिसक गईं। उसकी इस मान-मुद्रा को भंग करने के लिए मुझे एक उपाय सूझा। मैंने उसे शीघ्र ही क्रियात्मक रूप दिया। एक पल में उसकी यह मुद्रा भंग हो गई। मैंने क्रोध नाट्य रचा—"अच्छा! तो अब ऐसा ही सही। आज से मेरा तुमसे कोई सम्............" मैं इतना ही कह पाया था कि उसने सहसा उठकर मेरे मुख पर अपना

नकारात्मक कोमल कर रखकर मुझे आगे कुछ भी न कहने पर विवश कर दिया था। इस क्रिया के साथ ही उसकी दैन्य-मुद्रा नेत्रों में पुञ्जीभूत हो आई। मेरे नेत्रों ने उसका यह भाव पढ़ लिया था। नेत्र मिलते ही हम दोनों की भावना नृत्य कर उठी और हम आलिंगनबद्ध थे।"

कुमार बहुत काल तक इसी मुद्रा का स्मरण करते रहे। इस विषय पर सोचते-सोचते जब उनका मन श्लथ हो गया था तो उसने अपनी विचार-दिशा परिवर्त्तित की। जिस प्रकार कोई भयंकर स्वप्न देखकर सहसा चौंक पड़ता है उसी प्रकार परिवर्त्तन के उपस्थित होने पर वे चौंक पड़े। प्रकृतिस्थ होने पर वे सोचने लगे :—"स्त्री मोहमयी प्रगाढ़-निद्रा है। इस मोहमयी निद्रा को पाकर मनुष्य एकदम निष्क्रिय हो जाता है। मृत्यु का दूसरा नाम ही निष्क्रियता है। निद्रा के कारण ही वह उद्देश्य पूर्त्ति नहीं कर पाता है। वह पथ-भ्रष्ट हो जाता है। मनुष्य यदि अपनी लक्ष्य सिद्धि चाहता है तो उसे इस मोह-निद्रा का अवसान करना होगा। निद्रा का अवसान त्याग में है। क्या त्याग उचित है?"...स्त्री एक, जीव अनेक। इधर एक स्त्री ही का संतोष, उधर अनेक आत्माओं का संतोष! क्या एक के हेतु अनेक का त्याग उचित है?...और यह राजपाट?...यह भी तो स्त्री की भाँति हमें पथभ्रष्ट करनेवाला आकर्षण है। स्त्री मोहमयी अमानिशा है जिसमें उसको कुछ दीखता ही नहीं। उस निशा में पलता हुआ मनुष्य यह

समझता है कि यह निशा ही कल्याणप्रद है, मोक्षदायिनी है। स्त्री वह सुरा है जिसकी मादकता में मनुष्य कंचन और कामिनी को त्याग अन्य कुछ सोच ही नहीं सकता। वह सोच ही कैसे पाए, सोचने का उसे क्षण भर का भी अवकाश नहीं। वह अन्य संसार के विषय में जानता ही नहीं कि इस स्थूल संसार के अतिरिक्त भी कोई संसार है। स्त्री मोह-कान्तार में मधु-ऋतु के समान है जो हर डाली, हर पत्ते और हर पुष्प पर अपना हास बिखेरती रहती है…"

कुमार इस प्रकार सोचते-सोचते किसी ध्वनि का अनुभव करते हैं जो उनके हृदय के न जाने किस गहनतम प्रकोष्ठ से निस्सृत् होती है। स्वर बहुत ही मन्द है :—

"स्त्री के जिस रूप पर कुमार विचार कर रहे हैं वह ठीक नहीं। उसका रूप यह नहीं है। इसमें तो मनुष्य अपनी दुर्बलता की कहानी कहता है। स्त्री का इनमें से कोई भी रूप सत्य नहीं। उसका यदि कोई भी रूप सत्य है तो वह है शक्ति रूप। वह शक्ति रूपा है। कुमार! आप अपने सरल मस्तिष्क को इस प्रकार के विचारों से विकृत न करें। आप अपने ही पूर्वजों की गाथा पर दृष्टिपात करें, यदि वह शक्ति-स्वरूपा न होती तो मंथरा दासी के रूप में वह राम-वनवास का नाटक नहीं रच पाती। और भी, जानते हैं कुमार! वह दासी यदि इस नाट्य को न रचती तो क्या यह पृथ्वी रावण जैसे महापापी के बोझ से कभी हलकी होती? क्या वह सीता का

राम के प्रति प्रेम-प्राबल्य नहीं था जिससे बद्ध वे राम की अनुगामिनी हुई ? वे यदि वन को न जातीं तो उनके विनाश का कारण ही क्या होता ?'''अतः कुमार आप कभी भी स्त्री के रूप पर पक्षपातपूर्ण विचार न करें। वह सृष्टि की आदि शक्ति है।"

कुमार अन्तर्वाणी सुनकर मन में गुनने लगे—"वास्तव में संसार की प्रत्येक वस्तु निर्दोष है। मनुष्य के उपयोग से वह भली-बुरी की संज्ञा ग्रहण करती है।"

तदुपरान्त कुमार के मानस में प्रश्न-बीचि उठी—"क्या मुझे स्त्री से प्रेम नहीं करना चाहिए, जब कि वह अपना सम्पूर्ण जीवन पुरुष के चरणों में न्योछावर कर देती है।"

"प्रेम करना पाप नहीं, कर्त्तव्य से मुख मोड़ लेना पाप है। प्रेम कर्त्तव्य है, मोह अकर्त्तव्य। प्रेम कभी हर्ष-विषाद को प्राप्त नहीं होता। स्त्री क्या संसार के प्राणिमात्र, सब प्रेम के पात्र हैं। स्त्री अपने को अर्पित कर दूसरे को विनिमय में चाहती है। यह उसकी स्वार्थपरता है। पुरुष को अपना प्रेम उसे देना चाहिए मोह नहीं। मोह का दूसरा रूप दुःख है और प्रेम का सर्वकालीन समरूप।"

वे इतना ही सोच पाए थे कि उनकी विचार-निद्रा किसी मधुर कण्ठ ने भंग कर दी।

प्रणय-केलि (२)

गोपा ने जब उनकी विचार-तन्द्रा में बाधा दी तो वह स्वयं उनके विचारों का विषय हो गई। वह चाहती भी यही थी। कुमार ने पीठ पर रखा हुआ उसका हाथ अपने हाथ में ले उसको अपने समक्ष घसीट लिया। वह भी मन्द-मन्द मुस्कराती हुई उनके समक्ष उपस्थित हो गई। उसने प्रस्ताव किया—"आर्य पुत्र! यह वाटिका-सौंदर्य में आनन्द लाभ पाने का सुकाल है। चलिए! हम उसकी सौन्दर्य-सरिता में अवगाहन करें।"

"चलो प्रिये! मुझे तो चलने में कोई बाधा ही नहीं, पर मैं एक बात सोचता हूँ कि क्या, वाटिका का सौन्दर्य तुम्हारी सौन्दर्य-गरिमा का एक कण भी होगा?"

'आप तो बस!.........' वह लजाती हुई इतना ही कह पाई। इतना कह कर उसने लज्जा की लाली समेटने के लिए दूसरी ओर मुँह मोड़ लिया।

"लज्जा की लाली में कितना सौन्दर्य है। मुझे यह निरखने का सौभाग्य दो देवि!"

गोपा ने बिना मुख घुमाए ही अपने प्रस्ताव का पुनः उनके समक्ष लघु संस्करण उपस्थित किया। वे आसन से उठ खड़े हुए और उसका हाथ अपने हाथ में ले वाटिका

विहार के लिए चल दिए। उसने आरम्भ ही से प्रत्येक फुलवारी, प्रत्येक क्यारी, प्रत्येक पुष्प और उसके प्रत्येक रंग के विषय में कुछ तो स्वयं बतलाना शुरू कर दिया और कुछ अपने प्रियतम से पूँछना। प्रत्येक दल की ओर उसने कुमार का ध्यान आकर्षित किया। अनुकूल वातावरण के सादृश्य में विचरते हुए उसे उद्यान की घटना स्मरण हो आई। वह ठिठक गई और विनोद-मुद्रा में प्रियतम के गलबहियाँ डाल कर वाणी में मृदुता घोलती हुई प्रश्न करने लगी—"नाथ! क्या आपको उद्यान वाली घटना का स्मरण है?" वाक्य के अन्तिम भाग के उच्चारण के साथ ही साथ उसने अपने नेत्रों में चञ्चलता भर उनको अद्भुत प्रकार से नचाया। कुमार को उनमें मादक संदेश मिला। वे बोले—"हाँ प्रिये! भला उस मधुर-स्मृति को कौन भूल सकता है?"

वे पुनः उसका हाथ अपने हाथ में लेकर आगे बढ़े, इतने में उनकी दृष्टि एक हल्के रंग के लाल पुष्प पर पड़ी। गोपा जब लज्जित हुई थी तो उसके मुख-मण्डल पर ठीक इसी प्रकार की लालिमा दौड़ आई थी। उन्होंने उसका ध्यान उसी पुष्प की ओर आकर्षित किया और उपर्युक्त मन में आए भाव को दोहराया। उनके इस कथन ने उस पर पुनः लज्जा का आवरण तान दिया। लज्जा की लाल रेखाएँ उसके मुख-मण्डल पर इस प्रकार खिंच गई मानों—लज्जा की देवी ने अपना आनुरूप्य चित्रण करने का श्रीगणेश किया

हो। वह जब लज्जा की गरिमा को न सम्हाल सकी तो अपने को प्रियतम के वक्षस्थल में छिपा लेने का भोला एवं निष्फल प्रयत्न करने लगी। ये क्षण परम सुखद थे, रग-रग से मधु-स्रोत उमड़ चले। दोनों हृदय क्षण भर के लिये किसी अन्य जगत् में खो गये। मदिर-स्थिति का ज्वार आया और शनैः-शनैः उतर भी चला। दोनों व्यक्तियों का आलिंगन छूट गया। जब दोनों की चेतना किसी अन्य लोक से लौट कर इस लोक में आई तो उन्होंने शीघ्र ही पृथक होकर आस-पास के वातावरण पर एक दृष्टि फेरी। देखा—"वहाँ कोई नहीं था। तब जाकर कहीं उनकी जान में जान आई। वाटिका-सौन्दर्य पुनः नेत्र रञ्जक हो उठा। चञ्चरीक का गुंजन वाटिका के समस्त वातावरण को संगीतमय बना रहा था। दोनों का ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया। "आर्य-पुत्र! यह चंचरीक मनुष्य जाति से किसी प्रकार कम नहीं होते।"

"कैसे प्रिये?"

"ये स्वार्थी होते हैं।"

"क्योंकर?"

"ये एक कली का रस पान कर दूसरी पर जा बैठते हैं। एक से प्रीति लगाकर उसका हृदय तोड़कर दूसरी कली से स्वार्थ-सम्बन्ध जोड़ते चले जाते हैं।"

गोपा के इतना कहते ही कुमार के मन का चोर उनके

मुख-मण्डल पर व्यग्रता बनकर प्रकट होने लगा। वे सोचने लगे—"मेरे विचारों की सूचना इसको किस प्रकार हुई ? मैंने अपने विचार कभी भी किसी पर प्रकट नहीं किए फिर गोपा को इसकी सूचना किस प्रकार हुई ?........"

इतना सोचकर उनके मन में दूसरा विचार आया जिसने उनके उक्त विचार की नींव को ही उखाड़ फेंका। दूसरे क्षण वे यह सोचने लगे—"क्या मालूम कि वह इस भाव से सूचित होकर कह रही है या अन्य किसी भाव को आगे कर उसने यह बात कही है। मुझे इस प्रकार सोचकर अपने चित्त को अशान्त नहीं करना चाहिये। मुझे अपने मन तथा भावों पर पूर्ण संयम रखना चाहिये। अपनी भावनाओं को संयमित कर समय की अपेक्षा करनी चाहिये, इसी का दूसरा नाम धैर्य है। मुझे धैर्य त्याग कर अशान्त नहीं होना चाहिये।

उनके मुख-मण्डल पर अंकित व्यग्र-भाषा यशोधरा की तीव्र दृष्टि से छिपी न रही। उसने उसी क्षण स्वर में घबराहट के संकेत ले उनसे पूँछा—"आर्य पुत्र ! आप इतने व्यग्र क्यों हो रहे हैं ? क्या मस्तिष्क में पीड़ होने लगी है ?"

"हाँ ! देवि !! मस्तिष्क में पीड़ा प्रारम्भ हो गई है।"

गोपा इतना सुनते ही घबरा गई। इसी घबराहट की परिस्थति में उसका एक हाथ स्वतः उनके ललाट की ओर सान्त्वनास्त्र बन कर बढ़ गया। उसने उन्हें पास को स्फटिक शिला पर सावधानी से बिठला दिया। उनके कुछ सावधान

होने पर उसने रंगशाला में चलने का प्रस्ताव किया। उन्होंने भी यह सोचकर अपनी स्वीकृति दे दी कि यदि वे अब यहाँ अधिक ठहरे तो अतिकाल हो जाने का भय रहेगा। गोपा उनको लेकर प्रासाद की ओर चल दी। वह जिस दिन से प्रजापति गौतमी की पुत्रवधू के रूप में आई थी उस दिन से उन्होंने प्रातः और सायं का आना ही त्याग दिया था। वे कुमार के प्रासाद में दोपहर से पूर्व ही कुशल प्रश्न के हेतु आतीं और उनकी कुशलता का संतोषजनक दर्शन पाकर वे लौट जातीं।

प्रासाद में पहुँचते ही दासियों ने शय्या सजा दी। उस पर कुमार को आराम से लिटा दिया और स्वयं उनका ललाट चापने लगी। इधर तो उन्होंने बहाना किया और उधर उसका इसे सत्य मानना, दोनों को इसमें परमानन्द हुआ। गोपा ने अपना भाग्य सराहा कि उसे अपने प्राण-धन की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ, कुमार ने सोचा, यदि वे बहाना न करते तो यह आनन्द ही कहाँ प्राप्त होता। दासियों ने आज्ञा चाही कि वे भी कुमार की सेवा का सौभाग्य प्राप्त करें, पर पति-परायणा इस अलभ्य लाभमयी घड़ी को हाथ से कैसे जाने देती? कुछ क्षण उपरांत कुमार ने उसे मना करते हुये कहाः—

"प्रिये! अब मैं बिल्कुल प्रकृतिस्थ हूँ। अब अपने को अधिक कष्ट न दो। तुम्हारे ये कोमल हाथ इसलिये नहीं

बने हैं कि इनसे तुम सेवा-कार्य करो।"

इतना कह उन्होंने उसका हाथ अपने हाथ में ले उससे बड़े प्रेम से खेलने लगे। दासियों ने इसी बीच में भोजन व्यवस्था कर दी। उन्होंने कुमार को काल की सूचना दी।



तेरहवाँ परिच्छेद

(अ) वृद्ध

शक्र दुर्लभ भोगों को भोगते हुये भी कुमार की वृत्ति इनमें नहीं रमती। वे परिवर्तन चाहते थे। उन्हें वातावरण में नवीनता चाहिये थी। वे ऐसे वातावरण का अनुभव कर रहे थे जो मन को उबा देने वाला था। उसके कण-कण से वही यन्त्रवत् व्यवहार की थका देने वाली और कानों को बहरा कर देने वाली घर्र........घर्र की सी आवाज आया करती थी। वे ही दासियाँ, वे ही उनके हाव-भाव, वही उनका बात करने का ढँग, वे ही परिचित कण्ठ, वही भोजन, वही राजसी बोझिल वातावरण, वही उद्यान, वही उद्यान-भूमि, वे ही प्रासाद की ऊँची-ऊँची दीवारें, इन सबको देखते-देखते, इन सबका अनुभव करते-करते आँखें पथरा गई थीं। उनके मन में कभी-कभी तो ऐसे विचार उठते हैं कि वे इन सबसे

आँखें बन्द कर लें। उनका मन चाहने लगा कि वे लौह-द्वार से निकल कर बाहर का जीवन भी देखें—उसका अनुभव करें। वे यह भी देखें कि उनके राज्य का विस्तार कहाँ तक है। राज्य में बसने वाली प्रजा कैसी है। वह अपना जीवन-निर्वाह किस प्रकार करती है?.........

कई दिनों से उनके मन में ये विचार घुमड़ रहे थे। उनका मन-पंछी प्राचीरों के उस पार के संसार में उड़ जाने के लिए व्याकुल हो रहा था। वह सोच रहा था—"क्यों न एक दिन चलकर उस पार के संसार को देखा जाय?"

अपने मन में ऐसा निश्चय कर एक दिन वे सारथी से बोले—"भद्र छन्दक! मैं उद्यान की सैर करना चाहता हूँ, अतः यान प्रस्तुत करो।"

"अच्छा देव!" कहकर उसने कुमार के वचन का अभिनन्दन किया। उनकी आज्ञा का अभिनन्दन कर वह महाराज के पास पहुँचा और कुमार के विचार की उनको सूचना दी। महाराज यह सूचना पाकर अति हर्षित हुये। वे क्यों न हर्षित होते, आज उन्हें ऐसी सूचना मिली कि जिससे कुमार का राज्य में अनुराग होना झलकता था। उनका यह स्वप्न कि कुमार—चक्रवर्ती राजा हों—सत्य का चोला धारण करता हुआ प्रतीत हो रहा था। उन्होंने छन्दक को आज्ञा दी कि वह शीघ्र ही यह घोषणा करा दे कि उद्यान-मार्ग पर कोई लूला, लँगड़ा, अन्धा, रोगी आदि न आवे और

न कोई मृतक ही दाह-क्रिया के हेतु ले जाय। इस घोषणा के अतिरिक्त उद्यान-मार्ग को शीघ्र ही स्वच्छ कराया जाय। सुगन्धित तैलों से उसे सिंचित किया जाय। मार्ग की सजावट भी पूर्णरूपेण होनी चाहिये !

महाराज की आज्ञा की देर थी कि मार्ग बात की बात में सजा दिया गया। क्षण भर में सारे कार्य सम्पन्न हो गये। सारथी ने यान को देवयान के सदृश सजाकर कुमार से काल निवेदन किया। वे देव-विमान-निभ प्रस्तुत यान में बैठकर उद्यान की ओर चले। मार्ग में प्रसन्न दृश्यों और प्रसन्न व्यक्तियों को देखकर उनका चित्त कुछ हलका हुआ। बीच-बीच में वे छन्दक से अपने प्रसन्न भावों का प्रकटीकरण करते जाते थे। चारों ओर के दृश्यों की चारुता ने उनके मन का सोया अनुराग जगा दिया। उनके यान में जुते, धवल वर्ण के मंगल नामक सिंधु देशीय, अश्वों की टापों का बँधा हुआ एक सा क्रम और उसके साथ चक्रों की खड़खड़ाहट मिल कर एक अनोखो संगीत-ध्वनि सृजन कर रही थी। उनका अन्तर्मन संगीत की मधुर-ध्वनि से गूँज उठा। इन प्रसन्न दृश्य-वीचियों से तिरती हुई उनकी दृष्टि कुछ दूर जाकर कौतूहल से भेंटी। उन्होंने मनुष्याकृति अनुरूप एक ऐसी वस्तु को देखा जिसके केश श्वेत थे, मेरुदण्ड झुका हुआ। चर्मअस्थि-खूँटियों पर लटक रहा था। जिसकी नेत्र-ज्योति बुझने ही वाली थी, जिसका जीवन-रस तरस तरस कर

तस्कराब्दों ने अपहरण कर लिया था। वह मार्ग के व्यक्तियों से भिक्षा माँग रहा था। उसके स्वर में विकृति थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसके शब्दों में जीवन ही न हो। यह देखकर उनकी मूक जिज्ञासा मुखरित हो उठीः—

"भद्र छन्दक ! यह कौन सी वस्तु है जो मनुष्यों जैसी है ?"

"देव ! यह मनुष्य है।"

"तो इसके केश श्वेत क्यों हैं ? लकुटी टेक कर क्यों चल रहा है ? कमर झुकी हुई क्यों है ? इसका स्वर भी अन्यों जैसा नहीं है"।

"देव ! यह वृद्ध कहलाता है।"

"भद्र ! वृद्ध क्या होता है ?"

"देव ! जिसे अब अधिक जीवित नहीं रहना है। इसकी आयु पूर्ण हो चली है। वर्षों की गरिमा ने इसका मेरुदण्ड झुका दिया है। तस्कराब्दों के द्वारा इसका जीवन-रस हरण कर लिया गया है इसलिए चर्म की झुर्रियाँ थैलियों के रूप में अस्थि की खूँटियों पर लटक गई हैं। देव ! अस्सी वर्ष पूर्व इसने भी अपनी माँ का दूध पिया था। इसने भी अपनी सुदृढ़ बाहुओं से धनुष को तौलकर टंकोरा था। बड़े-बड़े हिंसक जीवों का इसने भी अपने तरुणाई में शिकार खेला था। आज वृद्ध हो जाने से इसकी यह दशा हो गई है।"

"वह वृद्ध क्यों हो गया ? क्या उसे किसी ने इस

अवस्था को प्राप्त करने के हेतु बाध्य किया था ?"

"नहीं देव ! यह आयु का प्रभाव है जिसके कारण वह स्वतः वृद्ध हो गया ।"

"भद्र ! तो क्या आयु के प्रभाव से मैं भी स्वतः इस अवस्था को प्राप्त हो जाऊँगा ।"

"हाँ देव ! आयु की गरिमा अनिवार्य है, यह शरीर स्वतः वृद्ध हो जायगा ।"

"भद्र ! क्या इसी की भाँति मेरी भी आकृति भयानक और अनाकर्षक हो जायगी ।"

"देव ! आपकी आकृति भी इसी प्रकार भयानक और अनाकर्षक हो जायगी ।"

"भद्र ! क्या यशोधरा की आकृति भी.........?"

"हाँ देव । यशोधरा की आकृति भी.........।"

"क्या सभी प्राणी इस अवस्था की अनिवार्यइयत्ता के अन्तर्गत हैं ?"

"हाँ ! संसार के सभी प्राणी.........क्या मनुष्य, क्या पशु, क्या पक्षी, क्या कीट, सभी.........।"

कुमार को वृद्धावस्था की अनिवार्यता जानकर दुःख हुआ । उनका मानस पटल विचारों की चल-माया का रंगमंच हो गया । वे अन्यमनस्क हो गए । दुःखित चित्त से उद्यान की शोभा से क्या लाभ उठा सकते अतः उन्होंने सारथी को प्रासाद लौट चलने की आज्ञा दी । "अच्छा देव !" कहकर उसने यान को

प्रासाद की दिशा में मोड़ दिया।

महाराज ने कुमार को लौट आया जानकर छन्दक को बुलवाया। उन्होंने कुमार के उद्यान से शीघ्र लौट आने का कारण पूँछा। उसने मार्ग का सर्व वृत्तान्त कहा। जब छन्दक ने उनकी प्रसन्न दृश्यों को देखकर रमी हुई वृत्ति का परिचय दिया तब वे प्रसन्न हुए, पर जब दूसरे ही क्षण उसने वृद्ध की घटना का वर्णन किया तो उन्हें एक धक्का-सा लगा। प्रसन्नता की गहरी पराजय हुई, उदासीनता की पताका फहरी। एक अज्ञात भय उनके अन्तर के गम्भीरतम प्रकोष्ठ में प्रवेश कर गया। उन्होंने छन्दक को विदा किया और अमात्य को बुला भेजा। अमात्य ने आकर महाराज की जयकार की। उस जयकार के छोर को पकड़ कर उनकी हृदय-वेदना प्रकट होने लगी—"अब जय कहाँ—अमात्य! पराजय ही पराजय शेष है।"

"यह क्या कह रहे हैं महाराज! पराजय हो आपके शत्रुओं की।"

महाराज ने अमात्य से पूरा वृत्तान्त कह सुनाया। वे भी इसे सुनकर चिन्तातुर हो उठे। आमोद में अनुराग प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ ही था कि यह दुर्घटना घट गई। किसी भी आयु पीड़ित को उनके समक्ष न आने देना चाहिए। यह विचार कर अमात्य ने महाराज से अर्ध योजन तक कड़ा पहरा बिठला देने की बात सुझाई। आमोद की मात्रा में सुधार कराने का भी विचार सामने लाया गया। महाराज ने उनको ऐसा ही

करने को कहा।

इधर कुमार अन्तःपुर में आकर एकान्त प्रकोष्ठ में विचार मग्न हो गए। वे सोचने लगे—"जरा, जीवन में दुःख का हेतु है। मनुष्य जीवन ही क्या, संसार के समस्त प्राणियों की यह कष्टकर अवस्था होती है, उसके नाना दुःख सहन करने पड़ते हैं। धिक् है ऐसे जीवन को जिस जीवन में जन्म और वृद्धावस्था आदि व्याधियाँ आती हैं। ऐसे जीवन से लाभ? क्या ऐसे जीवन की सम्भावना नहीं जिसमें वृद्धावस्था जैसी कष्टकर अवस्था न आती हो? मनुष्य क्यों शाश्वत जीवन की खोज नहीं करता? क्यों वह दुःखों की दावा में जल रहा है? तू भौतिकता की भूल-भुलैयों में भटकता सुख मान रहा है सो क्यों? ये वस्तुएँ क्षणिक आकर्षणमयी हैं। इन आकर्षणों के पीछे तू क्यों विक्षिप्तों की भाँति भाग रहा है? मानव! मैं तेरे समक्ष एक ऐसे जीवन की रूप रेखा प्रस्तुत करना चाहता हूँ पर मैं असमर्थ हूँ। मुझे वह मार्ग नहीं प्राप्त हो रहा है जिस पर चल कर मैं शाश्वत जीवन की खोज कर सकूँ। जिस जीवन को पाकर मानव दुःखों से मुक्त हो जायगा। उसे जरा-जन्म रहित जीवन की प्राप्ति होगी। यह मार्ग इस प्रकार प्राप्त नहीं हो सकता। इसे पाने के लिए मुझे एकान्त साधना की आवश्यकता है। व्यक्तिगत एकान्त साधना की। एकान्त साधना किस प्रकार सम्भव होगी? क्या प्रासाद में रहकर या इसे त्याग कर.........."

कुमार यहीं तक सोच पाये थे कि उनके स्मृति-पटल पर गोपा का चित्र उभर आया। उन्होंने उसे दीन वाणी में अभ्यर्थना करते हुए देखा। वह कातरवाणी में प्रार्थना कर रही थी—"नाथ! दासी का संसार में आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है मेरी, आपको छोड़, अन्य कोई गति नहीं। पति ही स्त्री की गति है और वह ही उसका इहलोक और परलोक होता है। नाथ! जिस प्रकार सुगन्ध-रहित पुष्प का कोई मूल्य नहीं उसी प्रकार पति-हीना नारी का भी। यदि आप कञ्चन हैं तो मैं उस कञ्चन की आभा। यदि आप सूर्य हैं तो मैं उसकी किरण। यदि आप स्वर हैं तो मैं रागिनी। यदि आप सागर हैं तो मैं उसकी लहर। आपके बिना मेरा कोई अस्तित्व नहीं। नाथ! स्त्री ने पति का कभी अमंगल नहीं चाहा। यदि कोई अवसर आया तो उसने अपने सभी स्वार्थों को बलि के बकरों की भाँति भेंट चढ़ा दिया है। आपका मंगल यदि मुझे त्याग कर चलने में है तो यह मुझे सहर्ष स्वीकार है। मैं स्वप्न में भी कभी आपके मार्ग में बाधा बनकर आने का विचार न करूँगी। हाँ! मेरी एक यह प्रार्थना है कि आप जब भी मुझे त्यागने का विचार करें तो मुझे भी सूचित कर दें। चोरी-चोरी न जावें। आप कदाचित् यह न जानते हों कि पति के अन्तिम वाक्य स्त्री के लिए कितना महत्त्व रखते हैं! वे उसके जीवन की अन्तिम श्वासों तक किस भाँति उसे आशा के पालने में झुलाते रहते हैं! बस!

यही मेरी अन्तिम और एकमात्र विनय है…… ……'

इतनी अभ्यर्थना के उपरांत उसकी मूर्त्ति आँखों से ओझल हो गई। द्वन्द्व ने भीषणता ग्रहण की। उनका मस्तिष्क कर्त्तव्यों पर विचार करने लगा पर वह आँख से ओझल रहे। धीरे-धीरे जब भाव-संवेग मन्द पड़ा तो कर्त्तव्य के दो पक्ष उनके समक्ष आए। एक पक्ष में यशोधरा थी और दूसरे पक्ष में सारा संसार। दोनों में होड़ लगी। कभी प्रथम के हाथ मैदान रहता तो कभी द्वितीय पक्ष के। युद्ध बहुत समय तक चलता रहा। दोनों पक्ष अपना-अपना समर्थन लेकर आते। दोनों ही बारी-बारी से अपने-अपने पक्ष का महत्त्व प्रकाशित करते। जब यह द्वन्द्व अपने चरम को पहुँच रहा था तब उसका एक पक्ष मूर्त्त हो उठा। यशोधरा उनके समक्ष थी। वह मोहनी बनकर आई। कर्त्तव्य का दूसरा पक्ष धूमिल हो गया। उसने कुमार की चरण-बन्दना की। विजय वैजयन्ती उसके हाथ रही। यह है नाम रूप का प्रभाव। मानव-कल्याण की मूर्त्त-भावना अमूर्त्त हो गई।

"दासी से कौन सी चूक हो गई नाथ! जो उसके अभिवादन का अभिनन्दन भी नहीं करते?" उसने चुपचाप उनके पास आकर चरण-वन्दना की। उनका ध्यान उसकी ओर गया। तदुपरांत वह उक्त प्रश्न कर सकी। उन्होंने भी वाणी में अपनत्व की निष्ठता ले उसके प्रत्युत्तर में कहा—

"देवि! यह मेरे हृदय से पूँछो, वही तुम्हारे इस प्रश्न का उचित उत्तर देगा।"

कुमार के उत्तर से वह पूर्णतया सन्तुष्ट हो गई। उसने विषयान्तर करने के लिये पुनः प्रश्न किया।

"आर्य पुत्र! आप उद्यान से शीघ्र कैसे लौट आये? क्या उसकी सौन्दर्य-राशि आपके मन को न लुभा सकी?"

"उद्यान से शीघ्र लौट आने का कारण ही मेरे मन को स्खलित कर रहा है। आज मैंने एक वृद्ध को देखा। अपना कौतूहल शान्त करने के लिए मैंने छन्दक से प्रश्न किए तो ज्ञात हुआ कि एक दिन हम दोनों, हम दोनों ही क्या सारा संसार वृद्ध होगा और हमारी आकृतियाँ भयानक और अनाकर्षक हो जायँगी। कमर झुक जायगी। शरीर की माँसलता जाती रहेगी। तुममें जो आकर्षण है वह भी जाता रहेगा। तुम्हारा यह रूप क्षण-स्थायी है और यह नाम भी। सार्थकता तो उस जीवन की है जिसमें जरा, जन्म, मृत्यु आदि किसी दुःखावस्था का नाम भी न हो।"

कुमार जब अपने विचार गोपा पर प्रगट कर रहे थे तब गोपा उन अमूल्य विचारों पर मुक्त-हस्त हो मोती लुटा रही थी। वे अपनी बात कहे जा रहे थे।

"....स्त्री के रूप में इतना आकर्षण किस लिये?...... धमनियों में रक्त-प्रवाह के कारण? माँस के कारण?...... हाँ! यदि रक्त की मात्रा कम हो जाय तो आकर्षण भी

समाप्त हो जाय। इस शरीर में है ही क्या ?...... मांस, मज्जा, अस्थि, चर्म, मैल, कफ, थूक, लार आदि। इनका रूप कितना घृणित है ! स्त्री की आँखों की सुघड़ता उसे आकर्षण प्रदान करती है पर उससे कीचड़ जैसी घृणित वस्तु निकलती है। इसी प्रकार नाक को लीजिये, यदि इसकी बनावट में थोड़ा भी अन्तर हो जाय तो स्त्री का आकर्षण समाप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसमें से भी कितनी घृणित वस्तु निकलती है यह भी हम जानते हैं, फिर भी हम आँखों वाले जान-बूझकर अन्धे बन जाते हैं। यदि विचार किया जाय तो सम्पूर्ण शरीर को ही हम घृणित वस्तुओं का आकर पाते हैं। इन झूठे आकर्षणों की मरीचिका में फँसा हुआ मनुष्य दुःख उठा रहा है। दुःखों से मुक्ति ही मनुष्य का परम लक्ष्य है जिसे वह भुला बैठा है.........."

उनकी अजस्र बहती इस विचारधारा में बाधा देने के लिए वह धाड़ मार कर रो उठी और उनके चरणों से इस प्रकार चिपट गई मानों वे उसे त्याग कर अभी-अभी जा रहे हैं। उनकी विचारधारा में विक्षेप आना अनिवार्य था। उनका मन अशान्त हो गया। वाणी में अभ्यर्थना भरकर बोले—"देवि ! मुझे क्षमा कर दो। मैं वास्तव में भूल ही गया था कि मैं क्या कह रहा हूँ ? इसका क्या अर्थ है ? आदि। तुम्हें दुःखित देखकर मेरा हृदय वेदना से फटा जा रहा है।"

"आर्य पुत्र ! मैं आपके हाथों सभी प्रकार के दण्ड भोग

सकती हूँ पर आपके द्वारा तिरस्कृता हो मैं जीवित भी रहना न चाहूँगी।"

"यशोधरे! तुम ऐसा सोचकर अपने मन को दुःखी क्यों कर रही हो?" इतना कहकर कुमार शय्या से उतरे और उसे हृदय से लगा लिया।

(ब) रोगी

पुनः एक दिन कुमार ने अपने वातावरण से ऊबकर उद्यान जाने की इच्छा की। संसार में परिवर्तन एक अटल नियम है जो जगत-क्रम का नियमन करता है। जीवन का लक्षण भो परिवर्तनमय है। वह परिवर्तन चाहता है। लौह-यन्त्र भी परिवर्तन चाहता है फिर यह तो अस्थि-चर्म-मय शरीर है जिसमें हृदय और मस्तिष्क है। जिसमें अनेक इच्छायें उठा करती हैं। अतः मनुष्य लौह-यन्त्र से भिन्न हुआ। उसमें उससे कहीं अधिक विशेषतायें हैं। कुमार भी मनुष्य हैं, उनमें भी इच्छायें हैं। वे भी परिवर्तन के लिए कभी-कभी अधीर हो उठते हैं। आज परिवर्तन की

इच्छा ने उन्हें अधीर कर दिया। छन्दक ने उनको आज्ञा का 'अच्छा देव!' कहकर अभिनन्दन किया। उसने पुनः महाराज से उनका अभीप्सित निवेदन किया। इस सूचना ने महाराज के अन्तर का सुप्त भय जगा दिया। वे चिन्तातुर हो उठे। कई अप्रिय विचार मन में आये और चले गये। बहुत भाँति उन्होंने अपने मन को समझाया :—"उस दिन दैवयोग से वह वृद्ध मार्ग में आ गया था। बार-बार कोई थोड़े ही मिलेगा····· "

अपने मन को इस प्रकार समझाकर और उनकी इच्छा में किसी प्रकार बाधा न देने के विचार से उन्होंने छन्दक से यान जोतने के लिये कहा। वह चला गया। इधर महाराज स्वयं विचारों के आवर्त में घिर गये। छन्दक ने यथा समय कुमार को काल सूचित किया। वे देव-विमान सदृश उस रथ पर बैठ गये जिसमें धवल-वर्ण के मंगल-सिंधु जुते हुये थे। यान को छन्दक ने उद्यान की ओर मोड़ दिया। मार्ग की शोभा अनुपम थी। चारो ओर बन्दनवार से मार्ग सजाया गया था। मार्ग की धरा वारि अभिसिंचित थी। इत्रादि गन्धों की चहल-पहल थी। नागरिक कुमार के दर्शनार्थ अपनी सुन्दर वेश-भूषा बनाकर निकले थे। ऐसी चहल-पहल में उनकी वृत्ति खूब रमी। वे बड़े चाव से मार्ग-दृश्यों के सूक्ष्म निरीक्षण में निरत हुए। वे सोचने लगेः—

"कितने प्रसन्न हैं, कपिलवस्तु के ये लोग ! मैं अभीतक इतने प्रसन्न संसार से क्यों बञ्चित रखा गया ? आश्चर्य ! कहाँ प्रासाद का एकान्त और एक तान वातावरण ! कहाँ ये दृश्यावलियाँ ! इसे देखकर तो यह लगता है कि मानों ये मुखरित संसार आनन्द की गोद में पलता हो।

छन्दक ! यह शोभा तो देखते ही बनती है। कितने भले और प्रसन्न हैं ये लोग ! कितने मनोहर हैं ये प्राकृतिक दृश्य !"

"वास्तव में देव ! इनकी रमणीयता अवर्णनीय है।"

"छन्दक ! क्या कपिलवस्तु के उस पार के लोग भी इतने ही प्रसन्न हैं ?"

"हाँ देव ! इतने ही।"

"भद्र ! तब तो आश्चर्य है जो मैं इतने काल तक इससे वञ्चित रहा। मैं तो संसार के प्राणियों को दुःखी ही दुःखी सोचा करता था, सुख की मात्रा बहुत ही न्यून होगी, यह ही विचार किया करता था पर आज मेरी धारणा त्रुटि-पूर्ण प्रमाणित हो रही है। आज मैं अपने विचारों में सुधार चाहता हूँ।"

इस प्रकार कुमार प्रसन्न मन के प्रसन्न भावों का अभिव्यक्तीकरण करते जा रहे थे। वे दृश्य पर दृश्य पार कर रहे थे। यह संसार द्वन्द्वात्मक छाया में पलता है। सुख-दुःख जन्म-मरण, हास-अश्रु की घमछैयाँ में प्राणी पलते हैं। जीवन

है तो द्वन्द्व अनिवार्य है। बिना द्वन्द्व के जीवन अर्थहीन है। इन द्वन्द्वात्मक भावों में होड़ लगी रहती है। कभी कोई अपना प्रभुत्व जमाता है तो कभी कोई। कोई भाव किसी विरोधी-भाव के विकास को ग्रास बना लेता है तो कोई किसी भाव को। अभी-अभी जिसकी आँखों में हास था तो अभी-अभी उसके नेत्र अश्रु परिप्लावित हो जाते हैं। संसार की यह दुरंगी झलक, पल-पल पर उसके विधान में ये नाटकीय परिवर्तन, किसी की भी बुद्धि को सहज ही में चकरा देने वाले हैं। नियम की अटलता अवश्य है पर इस संसार में समय की कोई सीमा निर्धारित नहीं है। कुमार के नेत्र एक दृश्य को क्षण भर देख लेना चाहते थे पर यान की गति और दृश्यों का झुरमुट उन्हें इतना समय ही कब देता था। वे एक दृश्य को भली प्रकार देखने की सोच भी न पाते थे तबतक वहाँ दूसरा दृश्य आ उपस्थित होता था। उनका मन दृश्यमय हो रहा था कि उन्होंने किसी एक ध्वनि का अनुभव किया। वह अस्पष्ट सी थी। जैसे-जैसे उनका ध्यान दृश्यों तथा आसपास के अन्य वातावरण से हटकर उस ओर आकर्षित होता जा रहा था वैसे ही वैसे वह ध्वनि स्पष्ट होती जा रही थी। अब उनका ध्यान पूर्णरूपेण ध्वनि की ओर था अतः वे अब उसे स्पष्टतया सुन सकते थे। उन्होंने ध्वनि इस प्रकार सुनी—"है कोई दयालु आत्मा जो सहारा देकर मुझे घर तक पहुँचा दे। आज नहीं तो कल मेरी मृत्यु

अनिवार्य है। ओ! दयालु पुरुषों! कोई तो मुझ अभागे की दशा पर तरस खाओ!"

यह एक रोगी था जिसे लकवा मार गया था। उसके शरीर में मर्मान्तक पीड़ा हो रही थी। पीड़ाधिक्य से वह धूलि में पड़ा छटपटा रहा था। उसके प्रति स्वर में करुणा का अथाह पारावार हिलोरें मार रहा था। करुणा की मूर्त्ति कुमार का हृदय उसका करुण क्रन्दन सुनकर उनका न रह गया। वे उसके पास जाने के लिए अधीर हो उठे। उनके हृदय की अधीरता ने सारथी को आज्ञा दी। उसने भी 'अच्छा देव'! कहकर उनकी आज्ञा का अभिनन्दन किया। उन्होंने कहा "भद्र! सारथी यह करुण-ध्वनि जहाँ से आ रही है, रथ को वहाँ ले चलो।" उसने रथ को उसी ओर मोड़ दिया। कुमार ने देखा कि एक व्यक्ति पीड़ा से कराह रहा है। उसे अपने तन बदन तक की सुधि नहीं। लोगों को अपनी सहायता के लिए पुकार रहा है। कुमार को उसके पास जाता देख लोगों ने उस पीड़ित व्यक्ति की सहायता की। उसे देखकर कुमार की जिज्ञासा की धार तीव्र हो गई। फलतः उन्होंने छन्दक से प्रश्न पूँछा। "यह कौन है जो पीड़ा से कराह रहा है?"

"यह रोगी है देव!"

"रोगी क्या होता है भद्र?"

"जिसे अब अधिक दिन नहीं जीना है। यह शीघ्र ही इस रोग से मृत्यु को प्राप्त हो जायगा।"

"भद्र ! 'इस रोग से' तुमने क्यों कहा ? क्या रोग कई प्रकार के होते हैं ?"

"हाँ ! देव !! रोग कई प्रकार के होते हैं ।"

"क्या वे सभी प्राण घातक होते हैं ?"

"हाँ ! देव !! सभी रोग प्राण घातक होते हैं ।"

"क्या इस व्यक्तिको इस रोग के अतिरिक्त दूसरा रोग नहीं हो सकता ?"

"इसे दूसरा रोग भी हो सकता है देव !"

"भद्र ! क्या रोग सभी को होते हैं या कुछको ?"

"रोग से सभी पीड़ित होते हैं देव ! इनसे कोई भी नहीं बच सकता ।"

"क्या ये मनुष्य जीवन में अनिवार्य रूप से आते हैं ? क्या मनुष्य व्याधि-धर्मा भी है ?"

"हाँ देव ! मनुष्य व्याधि-धर्मा भी है ।"

"भद्र ! यशोधरा और हम सभी व्याधि-धर्मा हुए । हम भी एक दिन रोगग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त होंगे ।"

"यथार्थ है देव !"

"धिक् है ऐसे जीवन को जिसे जरा, जन्म और रोग सताते हों । मेरा चित्त दुःखी हुआ ! भला अशान्त मन से किस प्रकार उद्यान का आनन्द लिया जा सकता है ? रथ अन्तःपुर की ओर ले चलो भद्र !"

"बहुत अच्छा देव !" इस प्रकार उसने उनकी आज्ञा का

अभिनन्दन किया और यान को अन्तःपुर की ओर मोड़ दिया। मार्ग भर कुमार के मन में विचार-द्वन्द्व इतनी तीव्रता से चलता रहा कि वे अर्धमार्ग से अन्तःपुर तक की समय सीमा का ज्ञान न रख सके। यान को ठहराते समय एक हलके से झटके ने उन्हें प्रासाद तक पहुँचाने का ज्ञान कराया। उन्हें आश्चर्य हुआ कि वे अभी अभी तो रोगी के पास थे! वे आश्चर्य विजड़ित मुद्रा में ही यान से उतरे। अन्तःपुर के एकान्त प्रकोष्ठ में जाकर वे विचार मग्न हो गये। उनके नेत्रों के समक्ष धूलि-धूसरित रोगी की मूर्ति नाच रही थी। उसकी करुण पुकार उनके कानों में अभी तक गूँज रही थी।

छन्दक ने महराज के पास जाकर मार्ग का सब वृतान्त निवेदन किया। वे गहन चिन्ता में डूब गये। अवसाद की गहरी रेखायें उनके ललाट पर खिंच गई। महाराज उपाय की खोज करने लगे। उनकी बुद्धि गतिहीन सी हो गई। कुमार दिन-रात संसार-दुःखों को अस्तित्त्वहीन करने का प्रयत्न करते और महाराज दिन रात उनकी वृत्ति रमाने का सामान जुटाते और नित नवीन उपाय सोचते, पर उनके सभी उपाय निष्फल हो जाते। निष्फलता उन्हें और व्यग्र कर डालती, उन्हें और गहरे में ले डुबोती। छन्दक से उन्होंने आस पास तीन तीन कोस तक कड़ा पहरा बिठला देने को कहकर उसे वहाँ से विदा किया। उधर कुमार को दुःखों से मुक्त होने का मार्ग नहीं मिलता था और इधर महाराज को किसी में अनुराग

जगाने का साधन !

इधर कुमार विचार-जलधि की गम्भीर लहरों में इस प्रकार डूबने उतराने लगे :—

"मनुष्य का यह जीवन कितना दुःखी है। सम्पूर्ण जीवन व्याधियों का आगार है ! इन व्याधियों का हेतु क्या है ?...... अप्राकृतिक रूप से आहार विहार करना ही मन को अस्वस्थ विचारों का आकर बनाना है। मनुष्य क्यों प्राकृतिक नियमों के अनुकूल नहीं चलता ? वह अपने मन को स्वस्थ विचारों का केन्द्र बनाने में क्यों समर्थ नहीं हो पाता ?......वह प्रमादी है। प्रमाद अस्वस्थ विचारों का जनक है। कर्तव्यशील प्राणी कभो प्रमादी नहीं हो सकता। प्रमाद व्याधियों का मूल है। मन प्रमादी बनना चाहता है। प्रमादी मन ही अस्वस्थ विचारों का आकर है। अस्वस्थ विचारों से अस्वस्थ आचारों का का जन्म होता है जिनसे अन्त में दुःख पहुँचता है। मनुष्य को अप्रमादी होना चाहिए। उद्यमशीलता मनुष्य जीवन का वास्तविक लक्षण है। सतत क्रियाशील जीवन अन्त में विजयी होता है। शरीर रोगों से मुक्त हो जाता है। मनुष्य को चाहिए कि वह उस शरीर की प्राप्ति का प्रयास करे जिसपर व्याधियों का कोई प्रभाव न पड़ सके। इस क्षणभंगुर जीवन को न जाने कितने रोग सताते हैं ? यह जीवन हमें दो दिन के लिए मिला है जिसको हमें सदुपयोग में लगाना चाहिए। उसको वृथा नहीं जाने देना चाहिए। हमें निज के कर्मों द्वारा ऐसा

जीवन प्राप्त करना चाहिए जिस जीवन की कोई परिधि न हो। जिसमें सभी कुछ समा जाय। जिसपर कोई प्रभाव न पड़ सके। व्याधि ! नहीं नहीं, व्याधियाँ। एक, नहीं नहीं, अनेक ! एक का ही परिणाम जब मृत्यु है तो अनेक के अनेक परिणाम ! अनेक प्रकार के दुःख। पीड़ा की भिन्न-भिन्न मात्रा। एक का ही रूप इतना भयानक तो अनेक का महाभयानक ! नही, नहीं महाभयानक से भी महाभयानक !........" इस विचार के आते ही उनके शरीर में भयमिश्रित करुणा की एक लहर शरीर की रग-रग में बह जाती है। उनके शरीर भर में एक कँपकपी सी फैल जाती है । ठीक इसी समय कोमल कण्ठ ने किसी की उपस्थिति की सूचना दी। कुमार को उस स्थिति ने पिछले दृश्य की भीषणता से परिचय कराया। वे तुरन्त ही उस प्रकार की स्थिति को टालने के लिए सचेत हो गये। उन्होंने उसकी ओर प्रेमभरी दृष्टि फेंकी। रोग की एक भीषण छाया सी उसकी मुखाकृति पर छाई हुई सी उन्हें विदित हुई। उन्होंने आँखें बन्दकर पुनः उसकी ओर देखा तो उसी दृश्य को पाया। उनके मुख से एक करुण आह निकल गई पर दूसरे ही क्षण वे पुनः सचेत हो गये। वाणी में कृत्रिमता भरकर बोले—"प्रिये ! आज तुम्हारी मुखकान्ति की तीव्रता के समक्ष मेरी दृष्टि ठहर नहीं पाती।"

वह फौरन समझ गई कि कुमार उसे देखकर नाटक खेल रहे हैं फिर भी उसने अपने इस भाव को छिपा लिया। उन्हीं

के वाक्यानुकूल उसने अपनी विचार-सृष्टि सँजोई और प्रत्युत्तर में बोली—"दासी को इतना बढ़ावा न दें नाथ ! आपकी कान्ति से मैं भी कान्तिमती हूँ यह आप मेरी नहीं परोक्ष में अपनी प्रशंसा कर रहे हैं।"

"तुम्हारी वाक्यपटुता सराहनीय है।"

"आपके साथ रहकर मुझमें जो भी गुण आ जायँ वे सब थोड़े हैं।"

"आज तो तुम मेरे हर तर्क को धराशायी बनाती जा रही हो। ज्ञात होता है कि आज इसी के लिए कटिबद्ध होकर आयी हो।"

"दासी ऐसा दुस्साहस स्वप्न में भी नहीं कर सकती।"

कुमार उसका उत्तर सुनकर सस्मित आनन हो गए। उनकी यह मुद्रा देखकर वह बोली :—

"दासी आपको प्रसन्न देखकर कृत-कृत्य हुई। ज्ञात होता है कि आज उद्यान की शोभा ने आपका मन हर लिया।"

उद्यान की बात सुनकर वह उदास हो गए। उनके मुख पर पुनः चिन्ता—की रेखाएँ खिंच आईं। उनकी मनोदशा का परिवर्तन गोपा की दृष्टि से न बच सका। वह मन ही मन पछताने लगी। उसे उद्यान का प्रसंग ही न चलाना चाहिए था। पर अब तो बाण शरासन से निकल चुका था। वे उदासीन भाव से मार्ग की घटना सुनाने लगे। पुनः उसी प्रकार की घटना, उसी प्रकार का चित्त-विक्षेप ! क्या इसमें

प्रहरियों की असावधानी है ? जो होना था वह होकर रहा, जो होना होगा वह होकर रहेगा। यशोधरा ने भारी मन से मार्ग की घटना आद्यन्त सुनी। उसके बाद उनको सान्त्वना देने के उद्देश्य से वह बोली :—

"आर्य-पुत्र ! आप इसे सोचकर क्यों अपने को दुःखी करते हैं, यह तो प्रकृति का नियम है। शरीर है तो आधियाँ-व्याधियाँ भी होंगी, इसमें अपने चित्त को दुःखी करने की कौन सी बात है ?"

"प्रिये ! हम ऐसे शरीर को पाने का प्रयत्न क्यों नहीं करते जिसपर रोगों का, जन्म का, जरा का, किसी का भी प्रभाव न पड़े।"

"नाथ ! यह दासी किस योग्य है जो आपको इस विषय पर कुछ बोल सके ! हाँ ! मैं इतना ही कह सकती हूँ कि संसार में ऐसी काया किसी को उपलब्ध नहीं। जिस किसी ने भी अमरत्त्व पाया वह भी इसको न रख सका। अतः आप व्यर्थ ही अपने चित्त को अशान्त न करें।"

"प्रिये ! क्या तुम इस तर्क को अस्वीकार करोगी कि जहाँ रोग है वहाँ उसको निर्मूल करने की औषधि भी है ! जहाँ हास है वहाँ उसके विपरीत अश्रु भी हैं। संसार में प्रत्येक समस्या का हल है ?"

"आर्य पुत्र ! क्या संसार की क्षणभंगुरता मिट सकती है ? क्या शरीर की नश्वरता अविनश्वर हो सकती है ?"

"देवि ! सभी कुछ सम्भव हो सकता है। संसार में कुछ भी असम्भव नहीं। प्रत्येक समस्या का उत्तर पाने के लिए उसके अनुकूल हमें प्रयास करना चाहिए। उसे पूरा करने की प्रबल इच्छा-शक्ति होनी चाहिए। अध्यवसाय भी उसी के अनुकूल होना चाहिए। इन सबसे ऊपर दृढ़ आत्मविश्वास का होना है जो धैर्य को अपने साथी के रूप में सदा-सदा के लिए वरण कर लेता है।"

"यह सत्य है आर्यपुत्र ! कि दृढ़ आत्मविश्वास के बिना कुछ भी होना असम्भव सा ही है फिर भी मैं यह जानना चाहूँगी कि संसार के कितने ऐसे प्राणी हैं जिनमें यह भावना पाई जाती है ?"

"संसार के प्रत्येक प्राणी में यह भावना निहित है उससे कार्य लेना और न लेना यह उसका दृष्टिकोण है।"

"यदि किसी ने भी आत्मविश्वास की दृढ़ता लेकर इस दिशा में प्रयत्न किया होता तो निश्चय ही आज यह समस्या, समस्या न रहती आर्यपुत्र !"

"मुझे विश्वास है कि जो भी समस्या अस्तित्व में आई उसने एक न एक दिन अपना हल अवश्य पाया।"

"आर्यपुत्र ! क्या यही आपका अन्तिम निर्णय है ?"

"इस प्रश्न का आशय देवि ?"

"नाथ ! इस दासी पर दया बनाए रखिए, इस अभागिनी को भुला मत दीजिएगा यही मेरी आपसे विनीत प्रार्थना है

उसकी यह दशा देखकर उन्होंने अपनी भाव-दिशा बदली और उसे नाना प्रकार से सान्त्वना दी। दासी ने भोजन-काल निवेदन किया। कुमार ने गोपा की प्रसन्नता के हेतु भोजन में स्वाद उत्पन्न किया और उसकी सराहना करते हुए उसे ग्रहण करने लगे।

(स) मृतक

एक दिन आकाश में झीने-झीने बादल छाए हुए थे। शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन बह रहा था। आकाश-मार्ग से पक्षीगण घर जाने की शीघ्रता कर रहे थे। सम्पूर्ण प्रकृति सुख-सुषमा में पगी प्रतीत हो रही थी। प्रकृति की मनोरम वृत्ति को देखकर कुमार ने मन में सोचा—"आज दोपहर के उपरान्त क्यों न उद्यान की शोभा देखी जाय?"

इस विचार को मन में धार उन्होंने सारथी को बुलाया और उसको उद्यान-गमन-काल कहकर यान प्रस्तुत करने की आज्ञा दे विदा किया। "अच्छा देव!" कहकर उसने उनकी आज्ञा का अभिनन्दन किया। उसने पुनः महाराज को कुमार का अभिलषित निवेदन किया। "कितना अद्भुत् संयोग है कि कुमार दो बार उद्यान के हेतु निकले पर दोनों बार उन्हें अर्ध-मार्ग से लौटना पड़ा। क्या इस बार भी कुछ नाटक

रचा जायगा ? क्या इस बार भी कुमार का मन त्रस्त करने का साज सजाया जायगा ? मन ! यदि तू इतना ही जान पाता कि कब क्या होगा तो कदाचित् तुझे अपने प्रत्येक कार्य में सफलता ही सफलता मिला करती, पर ऐसा होता नहीं ।"

महाराज से छन्दक के ऐसा कहने पर उनके मन में उक्त विचार आए। उनकी गति उस सर्प की भाँति हो रही थी जिसने छछूँदर को अपने मुख में ले लिया था, जिसके शरीर से दुर्गन्ध आ रही थी और जो न तो अब छोड़ते ही बनती थी और न निगलते ही ! यदि वह निगलता है तो वह निगली नहीं जाती, यदि वह त्यागता है तो अन्धा हो जाता है। दोनों भाँति कठिनाई ही कठिनाई है । महाराज यदि कुमार को जाने देते हैं तो उन्हें डर है कि कहीं फिर न कोई अप्रिय घटना घट जाय और यदि उन्हें नहीं जाने देते हैं तो कुमार को रुष्ट करते हैं । अन्त में उनको अपना निर्णय कुमार के मनोनुकूल ही देना पड़ा। छन्दक को पहले की ही भाँति उन्होंने मार्ग स्वच्छ कराने और उसे सजाने की आज्ञा दी।

छन्दक ने यान को देव-विमान सदृश सजाकर उसमें चार धवलवर्ण मंगल सिन्धुओं को जोतकर कुमार से काल निवेदन किया। कुमार उसपर बैठ कर उद्यान की ओर चल दिए। उन्होंने मार्ग के दृश्यों को पहले से भी कहीं अधिक आकर्षण युक्त पाया। उनका चित्त उन दृश्यों को देखकर अति प्रसन्न हुआ। पगडंडी धरती के गीत की एक कड़ी सी

प्रतीत हो रही थी। उसकी विषमता, गीत की आरोही-अवरोही सी लग रही थी। मनुष्य ही क्या, पशु-पक्षी सभी मुग्ध थे। उसी मुग्धावस्था में कुमार बोले—

"मनुष्य जिस प्रकार सुन्दर स्वप्न देखता है और उसमें विचरण करता हुआ वह आनन्द को प्राप्त होता है ठीक उसी प्रकार मैं इसमें विचरण करता हुआ आनन्द को प्राप्त हो रहा हूँ। यहाँ दुःख और दैन्य की छाया तक नहीं। कितना सलोना है यह संसार......"

कुमार के मन में उदित प्रसन्न भावों का पूर्ण चन्द्र राहु से न देखा गया। उसने उसे ग्रास बना लेने का उपक्रम किया। एक शिविका ग्रहण बनकर आई। कुमार ने प्रसन्न दृश्यों के मध्य से जाती हुई शिविका को देखा जिसे चार मनुष्य अपने कन्धों पर उठाये लिये जा रहे थे। उसके पीछे कुछ मनुष्य उदास सिर लटकाये चल रहे थे। कुछ व्यक्ति तथा कुछ स्त्रियाँ रोती काँदती चल रही थीं। कोई अपनी छाती पीट रही थी तो किसी के केश बिखरे हुये थे। स्त्रियों को अपने तन-बदन तक का होश न था। उनका विलाप हृदय-विदारक था। ऐसे करुण दृश्य को देखकर—कुमार की जिज्ञासा शान्त न रह सकी वह प्रश्न का रूप ले प्रकट हुई:—

"भद्र! ये लोग क्या ले जा रहे हैं? ये स्त्रियाँ तथा पुरुष क्यों रोते काँदते चल रहे हैं?"

"देव ! वह मर गया है उसका अन्तिम संस्कार करने के लिये ये लोग उसे श्मशान-भूमि की ओर लिये जा रहे हैं । ये स्त्रियाँ और ये पुरुष इसलिये रोते काँदते उसके पीछे चल रहे हैं कि अब वह सदा के लिये उनसे वियुक्त हो रहा है ।"

"भद्र ! शिविका पर लेटा हुआ व्यक्ति तो गतिहीन सा है ?"

"हाँ देव ! वह गतिहीन है उसका प्राणवायु उसके शरीर से निकल चुका है ।"

"भद्र ! गतिहीन शरीर को हम क्या संज्ञा देते हैं ?"

"देव ! वह मृतक कहलाता है ।"

"भद्र ! सुप्त व्यक्ति भी तो गतिहीन हो जाता है, क्या हम उसे भी मृतक कहेंगे ?"

"नहीं देव ! हम उसे मृतक नहीं कहेंगे, क्योंकि वह श्वास लेता रहता है ।"

"भद्र ! वह मरना क्या वस्तु है ?"

"देव ! जब मनुष्य मर जाता है तो वह अपने माता-पिता को, जाति-बिरादरी के व्यक्तियों को तथा अपने अन्य सम्बन्धियों को देख नहीं पाता और न उसका कोई सम्बन्धी ही उसे देख पाता है ।"

"क्या यही व्यक्ति मरा है या और भी व्यक्ति इस दशा को प्राप्त होते हैं ?"

"देव ! केवल यही मनुष्य नहीं मरा है, अन्य व्यक्ति भी इस दशा को प्राप्त करते हैं ।"

"क्या श्वास रुक जाने से उसे कष्ट नहीं होता भद्र ?"

"महान् कष्ट होता है देव ! कहते हैं कि जो पीड़ा सहस्र वृश्चिकों के दंशन से होती है उससे भी अधिक पीड़ा व्यक्ति को मरने पर होती है ।"

छन्दक का ऐसा उत्तर पाकर कुमार मरण-पीड़ा का अनुभव करने के लिए अपनी श्वास कुछ काल के लिये रोक लेते हैं । उनका दम घुटने लगता है । प्राण छटपटाने लगते हैं । प्राणों ने शरीर को अब त्यागा तब त्यागा, यही ज्ञात होता है । उन्होंने मरण-पीड़ा की झलक पा ली तब श्वास लेना प्रारम्भ किया और प्रकृतिस्थ हो छन्दक से बोलेः—"भद्र ! जब सभी की एक-न-एक दिन यही दशा होती है तो सभी को इतना ही कष्ट सहन करना पड़ता होगा ?"

"हाँ देव ! सभी को इतनी ही पीड़ा उठानी पड़ती है ।"

"ओह ! पीड़ा ! दुःख ! मानव का सम्पूर्ण जीवन ही दुःखों का आकर हो रहा है । उसे जन्म से लेकर मृत्यु तक न जाने कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं !—धिक् है ऐसे जीवन को ! ऐसे दुःखमय जीवन को लेकर हम क्या करेंगे ! मनुष्य की कोई भी श्वास दुःख से रिक्त नहीं फिर भी वह इसी में पलता सुख मान रहा है । वह कभी भी इससे मुक्त होने की नहीं सोचता । अय अभागे मानव ! क्या तू सदैव से ही इन दुःखों

के नरक में पलता आया है? क्या तूने कभी भी इससे मुक्त होने का विचार नहीं किया? छन्दक! आज मेरा चित्त अत्यन्त दुःखित हुआ। मैं दुःखित चित्त से उद्यान का आनन्द नहीं ले सकता, अतः यान को अन्तःपुर की ओर लौटा दो।"

"बहुत अच्छा देव!" इतना कहकर उसने यान को प्रासाद की ओर मोड़ दिया और मन में विचार करने लगा—"आज तीसरी बार कुमार उद्यान के अर्ध मार्ग से लौटे जा रहे हैं। न जाने वह कौन सी घड़ी है जिसमें कुमार उद्यान की ओर प्रस्थान करते हैं? इतना कड़ा पहरा होते हुए भी प्रत्येक बार कोई न कोई अप्रिय घटना घट ही जाती है, समझ में नहीं आता यह किसको लीला है, यह किसका विधान है? भला इतने कड़े पहरे की उपेक्षा कर किस प्रकार कोई मार्ग पर आने का साहस कर सकता है, यह बात तो मेरी सहज बुद्धि में आती नहीं! कौन है जो महाराज के सभी प्रयत्नों को असफल बनाता हुआ उनकी आशाओं पर पानी फेर रहा है? क्या कुमार को प्रासाद-कारा रोकने में समर्थ हो सकेगी? नियति नटी के समक्ष मनुष्य की सभी कलाएँ—प्रभावरहित हो जाती हैं। उसकी भृकुटी-विलास से ही मानव के स्वप्न-प्रासाद देखते ही देखते पल भर में भूलुण्ठित हो जाते हैं? यहीं पर तो मनुष्य निर्बल है। रचे हुए नाटक को वह ही समझ सकता है। उसके विधान को वह ही जान सकता है।"

छन्दक तो इधर विचारार्णव-वीचियों में डूब उछल रहा था, और उधर कुमार भी यान पर बैठे किसी अन्य संसार की भूलभुलैयों में खो गए थे। उनका मन उन विगत दोनों दिवसों की अपेक्षा आज कहीं अधिक दुःखी हुआ। मृतक का यह दृश्य उनके मन पर गहरी छाप छोड़ गया। उनकी सारी चेतना शिविका के दृश्य ने लूट ली। विचारों का भीषण विस्फोट हुआ। भाव-सृष्टि की कोमल-काया झुलस गई। सरसता के स्रोत नीरस हो गए। मृत्यु की भीषणता में सब कुछ स्वाहा हो गया। सहस्र वृश्चिक दंशन से भी अधिक पीड़ा—पारावार की अतल गहराइयों में सब कुछ समा गया। उनके नेत्र जिधर थे उधर ही रह गए, मुख खुला था तो खुला ही रह गया। यान पर कुमार के रूप में मानों उनकी प्रस्तर प्रतिमा बैठी थी। विचारों की सचलता में वे अचल से बैठे थे। कुछ क्षणों तक तो उनकी विचार सृष्टि जहाँ थी वहीं ठिठकी खड़ी रही, आगे बढ़नेका नाम ही न लेती थी। यह निश्चलता तूफान के पूर्व की थी। सहसा विचारों की धधकती काया मानस-ज्वालामुखी को फाड़ कर प्रकट हुई। तुमुल-घोष हुआ। उनके अन्तर से विचार एक दूसरे में गूँथे हुए इस प्रकार निकल रहे थे कि उनको पृथक् नहीं किया जा सकता था और न उनके मूल रूप को स्पष्ट पहचाना ही जा सकता था। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी उनके विचारों की रूप रेखा होगी वह इस प्रकार रही होगी:—

"मृत्यु ! जिसमें दुःख का चरम पलता है उससे बचने का उपाय भी यह मनुष्य नहीं कर रहा है । कितना आलसी हो गया है यह ! इन दुःखों में पलता-पलता क्या तू इनको सहन करने में अभ्यस्त हो गया है ? क्या पता तू भी मेरी तरह से असमर्थ रहा हो। मेरी ही तरह तू भी मुक्ति का उपाय सोचता रहा हो पर उसको न पा सका हो । आश्चर्य है कि सृष्टि के आदि काल से अब तक तू मुक्ति के मार्ग को नहीं खोज सका ! मृत्यु, तेरा वास्तविक रूप क्या है ? तू किसकी सन्तान है ? तुझे कौनसा कार्य दिया गया है ?...... कदाचित् तेरे भीषणरूप का साक्षात्कार करते ही मनुष्य अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हों । तेरा वास्तविक रूप निष्क्रियता है । तेरा वास्तविक लक्षण गतिहीनता है । तू परिवर्त्तन की सन्तान है । तेरा कार्य किसी के रूप को कुरूप कर देने का है । किसी की आकर्षक काया को अनाकर्षक बना देता है । क्या निर्माण तेरा सहोदर नहीं ? क्या तुझमें उससे विपरीत गुण नहीं ? क्या ध्वंस तेरा सहायक नहीं ?

वे लोग श्मशान की ओर जा रहे थे, यह श्मशान तेरा कौन है ? जिस प्रकार तू राजा और रंकमें भेद नहीं करती उसी प्रकार यह भी उनमें भेद नहीं करता । जिस प्रकार तेरा शीतल कर उसे ठंढा करते समय एक पल का भी समय नहीं देता और सभी की एक ही गति करता है, उसी तरह श्मशान भी सभी के लिए मिट्टी की कठोर शैय्या सजाये रहता है ।

उसकी स्त्री, अग्नि, वह उससे भी बढ़-चढ़ कर उसका स्वागत करती है। पंच-तत्व की काया को क्षण भर में राख की ढेरी बना देती है। उसका नाम, रूप, कुछ भी शेष नहीं रह जाता। उसकी काया मिट जाती है। मनुष्य नित्य ही यह सब देखता है फिर भी उसे चेत नहीं आता। उसको नहीं दीखता कि यह संसार क्षणिक है, यहाँ की प्रत्येक वस्तु क्षणिक है। यहाँ की हर वस्तु हमें उपदेश देती है पर आँखें होते हुये भी हम अन्धों की भाँति आचरण करते हैं। हम नहीं देखते कि इन चीजों में कौन से संदेश छिपे हुए हैं? हम सांसारिक चीजों में इस प्रकार व्यस्त हैं कि हमें इन पर दृष्टि डालने का समय ही नहीं मिलता, यदि समय मिलता भी है तो हमारी बुद्धि अन्य निरर्थक विषयों पर सोचते-सोचते इतनी शिथिल पड़ जाती है कि उसमें इन पर विचार करने की शक्ति ही शेष नहीं रह जाती। हमारी शक्तियाँ निस्सार कर्मों में खर्च हो रही हैं। हमें चाहिए कि हम निरन्तर मृत्यु से मुक्ति दिलाने वाले पथ की खोज करते रहें। सुनते हैं कि ऋषि-मुनियों को मृत्यु का क्लेश नहीं व्यापता। यह तो उनकी स्वार्थपरता है जो वे ऐसे मार्ग को अन्य लोगों को नहीं बतलाते! मनुष्य जन्म का उद्देश्य ही क्या है?......क्या अपने लिए मरना और अपने लिए ही जीना? ...क्या परोपकार का जीवन में कोई स्थान नहीं?

उन्हें चारों ओर से आहत मनुष्यों की करुण चीत्कार सुन पड़ती हैं। उनके विचारों में प्रधान रूप से जन्म, जरा,

व्याधियाँ और मृत्यु बारी-बारी से चक्कर काटते हैं। उनका मन संत्रस्त हो जाता है। चीत्कारों से घबराकर दोनों कान बन्दकर लेते हैं, तब उक्त विचार अपने-अपने भीषण रूप ले लेकर उपस्थित होते हैं। उक्त विचारों के आवर्त में फँसकर उनकी समग्र चेतना चक्कर काटने लगती है। उन्हें रथ, घोड़े, छन्दक, आसपास का वातावरण, सभी कुछ घूमता हुआ सा प्रतीत होता है। वे सहसा आँखें बन्दकर लेते हैं और अपने सिर को दोनों हथेलियों के बीच कर लेते हैं। विचार-वाहिनी इतने में अपने अन्दर चौगुनी शक्ति भर लेती है। अपनी समग्र सेना लेकर कुमार के मानस-दुर्ग पर आक्रमण कर देती है। उनके मस्तिष्क पर स्वेद बिन्दु झलकने लगते हैं। इतने में उन्हें एक झटका सा लगता है और वे अपने को प्रासाद की दीवारों से घिरा हुआ पाते हैं। वे चुप चाप यान से उतर कर प्रासाद के एकान्त कक्ष में चले जाते हैं और वहाँ पर विचार करने लगते हैं "ऐसा कष्टमय जीवन लेकर हम क्या करेंगे जिसमें जन्म का दुःख, जरा का दुःख अनेकानेक व्याधियों का दुःख और इन सबसे विकराल मृत्यु का दुःख हो।

वह जीवन जिस पर अपना रंचक भी अधिकार नहीं, जिसकी अवधि-सीमायें ही नहीं जिसपर व्याधियों के मनमाने आक्रमण होते ही रहते हैं। इनके अतिरिक्त लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, मद, मात्सर्य, काम क्रोधादि, इन सबके आक्रमण इस

शरीर-रूपी दुर्ग पर होते हैं और उसको निर्बल बना देते हैं। उसकी दृढ़ता का राज्य तहस-नहस कर देते हैं। इन सभी वैरियों से रक्षा हमें करनी चाहिये। इन सबसे सुरक्षित रखने की प्रणाली हमें अपनानी चाहिए। हमारे इस दुर्ग को संकेतमात्र में धराशायी बना देने वाली मृत्यु है। हमारा गढ़ कितना ही सुदृढ़ क्यों न हो लेकिन इसके समक्ष वह इस प्रकार क्षार क्षार हो जाता है जैसे बालू का घरोंदा। हमें उस जीवन को प्राप्त करना है जिसपर मृत्यु की भी तेग न चल सके। उसकी धार कुन्द हो जाय। हमारी दुर्बलता एक स्थान पर नहीं अनेक स्थानों पर है। इन दुर्बलताओं पर विजय पाना ही ऐसे जीवन को प्राप्त करना है जो हर प्रकार से अपना होगा। जिसपर अपना पूर्ण अधिकार होगा। मैं शीघ्र ही......"

कुमार को प्रासाद में पहुँचा कर छन्दक महाराज के पास गया। महाराज ने हृदय पर पत्थर रखकर सब वृतान्त सुना और बोले:—

"अब हम किन उपायों को अपनाएँ छन्दक? जिनको अपनाकर हमें सफलता मिले और कुमार हमारे होकर रहें। सभी पहरे व्यर्थ गए। आज का वृत्तान्त सुनकर मुझे निश्चय हो गया कि अब कुमार हमारे नहीं रहे। वे हमसे दूर होते जा रहे हैं। हमारी सभी आशाएँ आज धुँधली पड़ गई हैं। हमारा मनोराज्य लुट गया है। हमें भी अब यह राज्य, यह सम्पदा नहीं सुहाती। जो राज्य और जो सम्पदा कुमार को रोकने में

असमर्थ रही, हमारे कुमार को हमारे पास न रख सकी तो फिर हम उसे रखकर क्या करेंगे ? उसे भोग कर हमें कौन सा लाभ होगा ?—ओ ! कपिलवस्तु के वैभव ! तू व्यर्थ है, निस्सार है। भौतिक आकर्षणों ! तुम्हारा आकर्षण समाप्त हो गया, तुम्हारी समग्र शक्ति विलीन हो गई। छन्दक ! जाओ और अमात्य से कहो कि महाराज ने सम्भव उपायों से कुमार को अपना बनाने की बात कही है। इस विषय में उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है।

"बहुत अच्छा महाराज !" ऐसा कहकर वह अमात्य के पास गया और उनसे मार्ग का सभी वृत्तान्त कहकर महाराज की आज्ञा निवेदन की। उन्होंने कुमार के प्रासाद के आस-पास बहुत कड़ा पहरा बैठा दिया। पाँच काम-भोगों की मात्रा में वृद्धि कर दी। छन्दक चला गया। महाराज, अमात्य और महारानी प्रजापति गौतमी सभी चिन्ता की दहकती चिता में तिल-तिल कर जल रहे थे। उनकी भूख प्यास और आँखों की नींद न जाने कहाँ चली गई थी। उनकी आशाओं का सतीत्व जल रहा था। एक ओर ममता और मोह की स्वार्थमयी टोली, दूसरी ओर संसार की स्वस्तिमयी भावना की टोली, दोनों में होड़ लगी हुई थी। बहुत दिनों से परिणाम का निर्णय नहीं हो पाता था। आज से परिणाम ने निश्चित रूप-रेखा ग्रहण करनी प्रारम्भ कर दी थी। विश्व-मंगल भावना विजय

रंग ग्रहण करने लगी। आस-पास एक-एक योजन तक कड़ा पहरा बैठा दिया। उनको रोकने के लिए महाराज ने न जाने कब से लौह-द्वार का निर्माण करा दिया था जिसे दो सहस्र मनुष्यों की संगठित शक्ति खोलने में समर्थ हो पाती थी। वह द्वार जब खुलता था तो उनका घोर रव एक योजन तक जाता था। महाराज! ये सब तो व्यर्थ हुए। ममता ने आपसे क्या-क्या स्वाँग नहीं भराए? आपके स्वार्थ ने आपसे क्या नहीं कराया? क्या महाराज! आपने कभी इस पर भी विचार किया कि समग्र विश्व-प्राणियों का कल्याण आपके कुमार की प्रतीक्षा कर रहा है? आप उन्हें स्वर्ग शृंखलाओं में जकड़ देना चाहते हैं। आप उनके संसार की अनन्त सीमाओं को निश्चित एवं संकुचित सीमा देने का निष्फल प्रयत्न करते हैं। आपने कभी यह भी सोचा कि आपका हर एक प्रयत्न असफल क्यों हो जाता है? आप इस रहस्य की जान बूझकर क्यों उपेक्षा कर रहे हैं?........

महारानी गौतमी ने जब यह सुना कि मार्ग में अमुक घटना घट जाने से कुमार उद्यान के मार्ग से ही लौट आये हैं तो उन्होंने भी अपना सिर पीट लिया। वे अपनी व्यथा की कथा किसे सुनातीं? कौन उसे बटा लेता? वे महाराज के कक्ष में पहुँचीं तो उनको भी विचार-निमग्न पाया। उनके कानों ने स्पष्ट सुना कि वे कुछ अपने से ही बातें कर रहे हैं। आज उनकी यह आशा कि 'कुमार चक्रवर्त्ती महाराज

होंगे' सदा सदा के लिये उन्हें त्याग गई है। वे कह रहे थे— "व्यर्थ है यह सब राजपाट, धन, यश, वैभव, यह राजसिंहासन, यह राजमुकुट, (इस वाक्य के साथ ही उन्होंने अपना राजमुकुट उतार कर इस प्रकार फेंका कि वह महारानी गौतमी की दिशा में जाकर गिरा), मैं किसके लिये श्वासों का यह संसार सम्हालूँ ? मैं किसके लिये यह राज भोगूँ ? यह सब तो यहीं पड़ा रह जायगा। एक सम्बन्ध जिसके लिये मैं आज तक मरता रहा, वह भी समाप्त प्राय है तो अब मैं किसके आधार पर क्या प्रयत्न करूँ ?······कौन सा स्वाँग भरूँ ?······हूँ ह······सब कुछ समाप्त हो गया······सब······ब······अयँ······(सहसा महारानी को देखकर) तुम······तुम यहाँ कब से ?' क्या मेरे उजड़ते संसार की हँसी करने आई हो ? ······उसको नष्ट-भ्रष्ट होता हुआ देखने आई हो ? ······हा······हा हा। खूब जी भर कर देख लो महारानी इस अभागे के सर्वनाश का तमाशा !······"

············' वे आईं थीं अपना दुःख लेकर और अपने पति के दुःख को देखकर उसे भूल बैठीं। पति का दुःख उनका दुःख बन गया। उनकी उन्मादावस्था को देखकर उनका हृदय रो उठा। उनका धीरज भाग गया। वे कातर स्वर में महाराज से बोलीं—"आर्य ! आप पुरुष होकर इस प्रकार दीनता दिखला रहे हैं ? यह आपको शोभा नहीं देता। आप मुझे बतायें कि मैं नारी होकर क्या करूँ, कैसे धीरज

धरूँ ? अपने इस अधीर हृदय को किस प्रकार समझाऊँ ? आर्यपुत्र ! यह कितनी महान् विडम्बना है कि प्रजा यह सोचती होगी 'महाराज बहुत सुखी होंगे' और हमारा भाग्य हम पर, हमारी इस दैन्यावस्था पर कहकहे लगा रहा है। सुख यदि क्रय किया जा सकता तो कुबेर विनिन्दक खजानों के मैं मुँह खोल देती महाराज ! आपकी शांति के लिये मैं क्या कर सकती हूँ यह कहने की बात नहीं है महाराज !......

जब तक प्रजापति गौतमी बोलती रहीं तब तक महाराज अद्‌भुत् मुद्रा बनाये एक टक उनकी ओर देखते रहे और उनके वाक्यों को पीते रहे। जब उन्होंने बोलना बन्द कर दिया तो वे बहुत देर तक मौन हो कुछ सोचते रहे। अपने को सम्हालते रहे। जब वे थोड़े-थोड़े प्रकृतिस्थ हुये तब उनके पास आकर बोले—"प्रियतमे ! आज की घटना को सुनकर मेरे रहे-सहे आशा-तन्तु भी टूट गये। उनके बन्धन ढीले पड़ गये। उनमें समाया हुआ धैर्य-राग क्षत-विक्षत हो गया।"

"महाराज ! क्या यहाँ सबकी सभी इच्छायें पूर्ण हुई हैं ? हमारा आपका कर्त्तव्य तो उनकी पूर्त्ति के लिये प्रयत्न करना है फल का देने वाला तो कोई दूसरा ही है। हममें इतनी क्षमता कहाँ जो उसके रचे हुये नाटक को समझ सकें। उसका रचा हुआ नाटक तो वह ही समझ सकता है दूसरा

नहीं। उसे जो स्वीकार होगा वही होकर रहेगा। हमें प्रत्येक कार्य में उसका ही हाथ समझ कर संतोष करना चाहिए।"

"महारानी! अन्त में मनुष्य का वही एक सहारा है। मनुष्य को उसका सहारा न हो तो वह दुःख के पहाड़ों को झेल सकता है?..... वह अपने पर पड़े दुःखों के विषय में ही सोच-सोचकर पागल हो जाय यदि उसका नाम इस संसार में न हो। मैं भी यह जानता हूँ—महारानी! पर क्या हृदय पर किसी का अधिकार है? वह भी कभी अपना हुआ है? बुद्धि उसे नाना प्रकार से समझाती है पर हृदय उसके एक-एक तर्क को प्रभाव रहित बना देता है।"

"आर्य! सब कुछ उसी पर छोड़ दीजिये, हमारा धर्म धैर्य धारण करना है और सदा उसी के लिये प्रयत्न करते रहना है।"

"महारानी! यह बात मन समझ जाय तब न!"

"आर्य! स्त्री का हृदय तो पुरुष के हृदय से कहीं अधिक कोमल होता है। जब आप अपने मन को नहीं समझा पाते तो मैं नारी होकर किस प्रकार समझाने में समर्थ हो सकूँगी?"

महाराज और महारानी में इस प्रकार विवाद चल ही रहा था कि इतने में अमात्य ने 'जय जीव' कहकर अपने आने की सूचना दी। महारानी ने अमात्य को आया हुआ देखकर वहाँ से रङ्गमहल की ओर प्रस्थान किया।

(द) संन्यासी

कुछ कालोपरान्त जब कुमार प्रासाद की रँगरेलियों से ऊब गए और उनमें उन्हें कोई नवीनता दृष्टिगत न हुई तो उनका मन पुनः बाहर, प्राचीर के उस पार के संसार को देखने के लिए अधीर हो उठा। उन्होंने सारथी से अपनी इच्छा प्रगट की। महाराज की आज्ञा से मार्ग स्वच्छ करके सजाया गया। मार्ग ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण कपिलवस्तु को ही सजाया गया। पहरे कड़े करा दिए गये। उनसे काल निवेदन किया गया। वे उद्यानाभिमुख हो चल दिए। मार्ग की सज्जा कपिलवस्तु का लघु प्रदर्शनमात्र थी। कुमार की वृत्ति इनमें खूब रमी। वे प्रसन्नमन मार्ग के दृश्य देखने लगे। उनका यान अब कपिलवस्तु नगरी से बाहर आ गया था। चारो ओर धान के खेत लहलहा रहे थे। हरीतिमा की एक मखमली चादर बिछी हुई थी। वायु का एक हलका झोंका आने पर धान के पौधे इस प्रकार झुक जाते थे जिस प्रकार वायु के लहर के साथ पानी की सतह। कहीं-कहीं पर किसान अपने खेत देख रहे थे तो कहीं कोई अपने क्षेत्रों को ऊँचा स्थित होने के कारण सींच रहे थे। कुमार ने किसानों के मन प्रसन्न और तन रंक देखे।

उनकी दृष्टि कुछ दूर जाकर एक व्यक्ति पर जम गई। उसे देखकर उन्हें कौतूहल हुआ। यह एक संन्यासी था

जिसके वस्त्र गैरिक थे और सिर मुण्डित। हाथ में कमण्डलु था। उसे देखकर उनके मन में भाँति-भाँति के प्रश्न उठे। अन्त में उनका कौतूहल चुप न रह सका, बोल उठा—"भद्र ! वह कौन पुरुष जा रहा है जिसके वस्त्र दूसरों जैसे नहीं हैं। जिसका सिर भी मुड़ा हुआ है और हाथ में कमण्डलु लिए हुए हैं ?"

"देव ! यह प्रव्रजित है।"

"भद्र ! प्रव्रजित क्या होता है ?"

"देव ! उसने संसार का त्याग कर दिया है। वह माया-रहित हो विचर रहा है।"

"भद्र ! वह इस प्रकार क्यों विचर रहा है ?"

"देव ! वह मन की सच्ची शान्ति के हेतु इस प्रकार विचर रहा है।

"भद्र ! वह विचरने से किस प्रकार मन की शान्ति पा सकता है ?"

"देव ! उसने मन के राग को निर्मूल कर दिया है। संसार के किसी भी पदार्थ में अब उसकी आसक्ति नहीं रह गई है। वह धर्माचरण से शान्ति पाने का प्रयत्न करता है। धर्माचरण से संसार से मन विरक्त हो जाता है। मन के विरक्त होने पर उसमें किसी प्रकार का राग नहीं रह जाता। इस प्रकार वह शान्ति प्राप्त करता है। अहिंसा और दया यही उसके पास मूलमंत्र हैं।"

"भद्र ! क्या मानव कल्याणार्थ भी वह प्रयत्न करता है ?"

"हाँ देव ! मनुष्य के कल्याणार्थ वह संसार के प्राणियों में विचरण करता है ।"

सारथी से प्रश्न करके उनका मन प्रसन्न हुआ। वे मन ही मन सोचने लगे और सारथी को अन्तःपुर लौट चलने की आज्ञा दी। उसने रथ प्रासाद की ओर मोड़ दिया। उनके मन ने प्रसन्नता का अनुभव किया पर इधर उनका विचार-जगत् खिन्न हो उठा। मन इसलिए प्रसन्न हुआ कि मानो उसे उसकी समस्या का उत्तर मिल गया हो। विचार-जगत् ने इस प्रकार अपना सृष्टिक्रम जारी किया—

"आज मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरे वर्षों के प्रश्न का उत्तर मिल गया हो। मेरे मस्तिष्क में जो भ्रमात्मक धारणा आज तक छाई हुई थी वह आज समाप्त हो गई। मुझे भी इसी स्वच्छन्द मार्ग को अपनाना चाहिए। यही एक ऐसा मार्ग है जिसको अपनाकर कोई भी मानव कल्याण का मार्ग खोज सकता है। मुझे भी प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाहिए। पूर्व देखे हुए तीन संकेत संसार के दुःख-हेतुओं में प्रमुख हैं। उनके हेतुओं का मूलोच्छेदन करना दुःख का मूलोच्छेदन है। वृद्ध क्यों दीखा ?——क्योंकि वह जीवन की परम अभागी, अत्यन्त दुःखदायिनी अवस्था है। रोगी क्यों आया, वह यही तो संदेश लेकर आया कि वृद्धावस्था रोगों की जड़ है। रोग मृत्यु का हेतु है। मृत्यु सहस्र वृश्चिक दंशन से भी अधिक

पीड़ादायिनी है। इसके कारण का नाश करना है। जन्म और मृत्यु, जरा और जीवन यह दुःख की अवस्थाएँ हैं। मैं एक ऐसे जीवन की परिकल्पना करता हूँ जिसमें किसी प्रकार का कोई दुःख हेतु अपना प्रभाव न जमा पाए। उस महा-पुरुष ने मन की शान्ति के हेतु संसार का त्याग कर दिया, मैं निर्वाण के हेतु संसार का त्याग करूँगा। मैं विश्व-कल्याण के लिए प्रव्रजित होऊँगा। धन्य हो महात्मन् जो तुमने संसार को सदुपदेश देने के लिए गृह का त्याग कर दिया। तुमने अपने माता-पिता, भाई-बहिन, बन्धु-बान्धव, पुरजन-परिजन, सभी का त्याग कर दिया है। कितने भव्य विचार हैं तुम्हारे! तुमने अपने को त्याग कर वास्तव में अपने को पा लिया। तुमने सम्पूर्ण मानवता को अपनाकर अपना बना लिया। सच है 'त्याग' महान् है, त्याग की भावना भी महान् है और वह भी महान् है जिसमें त्याग को भावना ने प्रश्रय पाया। ऐसे अपूर्व गुणयुक्त त्याग को पाने की कौन चाह नहीं करेगा?............?"

कुमार इस प्रकार विचार-संकुल मानस लिये प्रासाद तक आ गये। रथ आकर रुक गया। छन्दक ने उन्हें विचार-तन्द्रा से जगाया—

"देव! प्रासाद आ गया अब आप अन्तःपुर में पधारें।"

उसके इस वाक्य ने उन्हें इस लोक का भान कराया। आस पास सरसरी दृष्टि डालते ही सारी परिस्थिति उनको

समझ में आ गई। वे रथ से उतर कर सीधे अन्तःपुर के एकान्त प्रकोष्ठ में जाकर विचारमग्न हो गये।

छन्दक ने आज का सम्पूर्ण वृत्तान्त महाराज के प्रति निवेदन किया। माना कि आज कुमार प्रसन्न थे फिर भी संन्यासी का दर्शन सुनकर उनका मन अज्ञात आशङ्का से भर गया। उन्होंने प्रासाद के पहरे और कड़े करा दिये। रक्षकों की संख्या में भी वृद्धि करा दी।

इधर जब कुमार एकान्त प्रकोष्ठ में बैठे विचारों के संसार में विचर रहे थे तब उधर यशोधरा के प्रसव-वेदना प्रारम्भ हुई। सम्पूर्ण रङ्गमहल में बात की बात में यह सूचना फैल गई। धाइयाँ बुलाई गयीं। उन्हें प्रसव-शाला में हटा दिया गया। सम्पूर्ण कपिलवस्तु आनन्द की थिरक भर लाने की प्रतीक्षा कर रहा था। गायक और नर्तकों की भीड़ प्रासाद के नीचे जुड़ने लगी। दरिद्र दान पाने की दरिद्र आशाओं को लेकर जमा होने लगे। यशोधरा के पुत्र हुआ। सभी की मुद्रा पर प्रसन्नता अठखेलियाँ कर उठी। हर्ष की सरिता बह चली। सम्पूर्ण कपिलवस्तु पर आनन्द-वृष्टि होने लगी। नर्तक नृत्य कर उठे और गायकों ने अपनी तान छेड़ी। दरिद्रों के लिए खजानों के बन्द मुख खोल दिये गये।

इधर कुमार थोड़ी देर के बाद जब विचार-निद्रा से जागे तो उन्होंने पुनः सम्पूर्ण कपिलवस्तु नगरी को देखना चाहा एतदर्थ उन्होंने अपना भव्य शृंगार किया। छन्दक को रथ

जोतने की आज्ञा दी। उनका इस समय का शृङ्गार दर्शनीय था। उनके अङ्ग-अङ्ग से शोभा-स्रोत मचला पड़ रहा था। उन पर श्री बरस रही थी। कोटि-कोटि काम उनकी शोभा को देखकर लज्जित हो गये। ऐसी भव्य-श्री-सम्पन्नता से ओत-प्रोत कुमार देव विमान सदृश रथ पर कपिलवस्तु घूमने निकले।

जिस समय वे विमान पर आरूढ़ होकर नगर की ओर जाने लगे उसी समय दासी ने उन्हें 'छोटे कुमार' की संसार में पदार्पण-सूचना दी। यह शुभ सन्देश सुन कर उनको ऐसा प्रतीत हुआ मानों किसी ने उनके कानों में विष घोल दिया हो। उन्होंने दासी के शब्द सुनकर अपने मन की अप्रसन्नता को इन शब्दों में उँड़ेल दिया—"राहु पैदा हुआ, बन्धन पैदा हुआ।"

महाराज शुद्धोदन के प्रति उनके ये शब्द निवेदित हुये तो उन्होंने लोगों से कह दिया कि उनके पौत्र का नाम 'राहुल' होगा। यह कुमार के मनोरथ रूपी चन्द्र को ग्रसने आया है।

कुमार जब कपिलवस्तु की शोभा निधि को आँखों की झोली में भर रहे थे तब उन पर एक क्षत्री-कन्या की दृष्टि पड़ी। वह उनकी शोभा-सरि में बह गई। उसका उद्धार असम्भव हो गया। उनकी शोभा पर उसने अपने मुग्ध मन को न्योछावर कर दिया। उनको देखकर उसने निम्न पंक्तियों को अपना कोमल कण्ठ प्रदान किया:—

"परम शान्त माता सोई, परम शान्त पितु सोय।
परम शान्त नारी सोई, जासु पती अस होय॥"
(बुद्धचर्या से)

कुमार के श्रुति-पुटों में मधुधार बह चली। उन्होंने मलों से विरक्त मन से सोचा कि यह तो मुझे सदुपदेश दे रही है। यह कह रही है :—

"उस प्रकार के स्वरूप को देखते माता का हृदय परम शान्त होता है। पिता का हृदय परम शान्त होता है, स्त्री का हृदय परम शान्त होता है। किसके शान्त होने पर हृदय परम शान्त होता है?······राग-रूपी अग्नि के शान्त हो जाने पर द्वेषाग्नि शान्त हो जाती है। द्वेषाग्नि के शान्त होने पर मोहाग्नि शान्त हो जाती है। मोहाग्नि से अभिमान और अभिमान के शान्त होने पर सभी मल शान्त हो जाते हैं। इस प्रकार मनुष्य परम शान्त हो जाता है। शान्ति पाने के हेतु ही वह प्रव्रजित हो गया। यह शान्ति पाने के हेतु मुझे भी प्रेरित कर रही है। मुझे प्रिय वचन सुना रही है। मैं निर्वाण की खोज कर रहा हूँ। आज ही मुझे गृह-त्याग कर प्रव्रजित हो निर्वाण की खोज करनी चाहिए। यह कन्या मुझे इसी प्रकार उपदेश दे रही है।" इस प्रकार सोचकर कुमार ने मन में सोचा—"इसने मुझे यह अमूल्य उपदेश सुनाया। अतः यह हमारी गुरू हुई। बिना गुरुदक्षिणा दिए मैं इसके ऋण से उऋण नहीं हो सकता। मुझे अवश्य कुछ-न-कुछ

गुरुदक्षिणा में देना चाहिए।" मन में ऐसा संकल्प कर उन्होंने अपने कण्ठ से एक लाख का मोतियों का हार उतारकर उसके पास भिजवा दिया। कुमार का हार पाकर वह परम प्रसन्न हुई। वह यह समझकर प्रसन्न हुई कि कुमार अब उसके प्रेमपाश में फँस गए हैं। आज वे खूब छककर घूमे। नगर में खुशी छाई हुई थी। मन जब सब देखकर शिथिल पड़ गया तब वे प्रासाद की ओर चल दिये।

चौदहवाँ परिच्छेद

(य) प्रव्रज्या

कुमार कपिलवस्तु की परिक्रमा करके जब प्रासाद में आये तो उन्होंने उसे रास-रंग में डूबा हुआ पाया। छोटे कुमार का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। आज ही उन्होंने गृह-त्याग का मन में संकल्प किया और आज ही ममता ने जन्म लिया। दृढ़ संकल्प सभी कठिनाइयों को पार कर जाता है। उनका मन अपनी प्रतिज्ञा एवं अपने संकल्प पर अटल है। आज जितनी बाधाओं को साकारता ग्रहण करनी हो वे साकारता ग्रहण कर लें, जितनी बाधाएँ मार्ग में आना चाहें मार्ग में आ लें, उन सबको पार कर आज वे विश्व-कल्याण के मार्ग की ओर अवश्य ही अग्रसर होंगे। आज उन्हें कोई भी नहीं रोक सकता, न यशोधरा, न माता-पिता

न राज-पाट, न स्वर्ण सिंहासन और न वह राहू जो उनके मनोरथ-चन्द्र को ग्रसने के लिए उत्पन्न हुआ है। जैसे ही उन्होंने अन्तःपुर में प्रवेश किया वैसे ही नर्तकियों ने घेर लिया उन्हें। उनसे निकल भागना कठिन था। वे आसन ग्रहण कर उनकी नृत्य-कला देखने लगे। आज वे नृत्य-कला के जितने शिल्प हैं दिखा देना चाहती हैं। वीणा की मृदु झङ्कार और मृदङ्ग की थाप उस सम्पूर्ण वातावरण को रसमय बनाने लगे। मादकता अङ्गों में समाती न थी। यौवन अङ्गों में मचल रहा था। नृत्य निरत नर्तकियों के घुँघरू, भावों की कल्पनामयी शय्या सजा देते थे। प्रासाद की प्रत्येक दीवार सङ्गीत निर्मित ज्ञात हो रही थी। यौवन नृत्य कर रहा था, मादकता लुभा रही थी। उन्माद मृदु अँगड़ाईयाँ ले रहा था। कामना का मधुर रव चारों ओर फैल रहा था। आनन्द-सरि में गीतों की दीपावली बह रही थी। ऐसे वातावरण में कलिकाएँ भी अपने में विकास-भाव भरने लगीं। वातावरण की यह उन्मद-गरिमा कुमार पर कुछ भी प्रभाव न डाल सकी। आज महाराज के प्रासाद को देखकर ऐसा लगता था मानों शहनाइयों की बारात सजकर यहाँ आई हो। आनन्द की झड़ी लगी हुई थी और हर्ष के नदी-नाले उमड़ चले थे।

कुमार का चित्त क्षण भर नर्तकियों के नृत्य में रम जाता और क्षण भर ही में उचट जाता। उन्हें रह-रहकर भूली

बात याद आती थी। वे पल भर के लिए मार्ग-भ्रष्ट से हो जाते, पर दूसरे ही क्षण सचेत होकर अपनी त्रुटि सुधारने लगते। कुछ देर तो उन्होंने आनन्द के कलरवमय वातावरण में कुछ भी न सोच पाया। थोड़ी देर बाद उनका मन विचारों का रङ्ग-बिरङ्गी तूलिका चलाने लगा:—

"मनुष्य इन प्रलोभनों में फँसा हुआ अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है। ये रस-रङ्ग क्यों?.....क्योंकि समय का सदुपयोग करने के लिये उनके जीवन में कोई कार्यक्रम ही नहीं है अतः वह समय व्यतीत करने के लिये इनमें अपनी वृत्ति को रमाता है। वह यौवन का, सृष्टि के साधन का दुरुपयोग करता है। जिस यौवन के स्वप्निल संसार में वह अपने को, अपने कर्त्तव्यों को भुला देता है वह क्षण-भंगुर है, इस पर वह तनिक भी विचार नहीं करता। रोग का एक हलका आक्रमण उसके सम्पूर्ण आकर्षण को क्षण भर में मिटा सकता है इसे वह भूल जाता है। पगले! तूने कभी यह भी सोचा कि इसमें तू कितना समय खोता है? तू क्या यह नहीं जानता कि जीवन का हर श्वांस अमूल्य है उसे व्यर्थ खोना अपने को खोना है। जानता है कि जिन इन्द्रियों का तू दास है वे दिन-दिन तेरी शक्ति को क्षीण कर रही हैं! तेरी संजीवनी शक्ति को छीन लेना ही उनका उद्देश्य है। तू इनकी दासता से मुक्त होने की बात सोच। क्या दास-वृत्ति तुझे पसन्द है? सोच! तू उनकी दासता में उन अमूल्य

क्षणों को खो रहा है जो एक बार जाकर फिर किसी भी प्रकार, किसी भी मूल्य पर वापस नहीं आते। क्या तुझे यह भी बताना पड़ेगा कि यह जीवन जो तुझे मिला है वह तेरे पिछले कर्मों के प्रताप से मिला है। इसको पाकर यदि तूने पुण्यार्जन न किया तो तुझे इस शरीर से भी हाथ धोना पड़ेगा। इसकी मुक्ति का उपाय केवल मानव शरीर पाकर हो सकता है। वह एक बार मिलकर दुबारा नहीं मिलता। जिसके पुण्य प्रबल होते हैं उन्हीं को यह शरीर दुबारा प्राप्त हो पाता है। क्या तुझे यह नहीं मालूम कि यह शरीर क्षण-भंगुर है? यह संसार दो दिन का मेला है। पंचतत्त्वों का समीकरण ही तो यह शरीर है। प्राण-वायु के निकलते ही यह शरीर मिट्टी हो जाता है। यह शरीर मिट्टी से उत्पन्न हुआ और मिट्टी ही में मिल जाता है। वृद्धावस्था में तेरी इन्द्रियाँ शिथिल हो जायँगी तब तू भोगों को किसके सहारे भोगेगा? यह रस-रङ्ग, यह ठाट, श्वास निकलते ही यहाँ का यहीं पड़ा रह जायगा। मैंने भी न जाने जीवन के कितने अमूल्य श्वास व्यर्थ खो दिये। मैं आजतक उस मार्ग की खोज में भटक रहा था जिस पर चलकर निर्वाण लाभ किया जा सकता है। जिस पर चलकर एक ऐसे जीवन की प्राप्ति की जा सकती है जिसमें जरा-जन्म, मृत्यु आदि किसी का भी प्रभाव न पड़ सके। इन सबके प्रभाव से जीवन अछूता रह सके। आज संन्यासी के रूप ने मुझे वह मार्ग दिखाया जिसकी मैं खोज कर रहा था। उसने

वह पाठ पढ़ाया जिससे मैं 'त्याग' जैसे महद्विचार को जीवन में स्थान दे सका। उनके दर्शन ने मेरे अन्दर उस कार्य को करने की प्रेरणा भर दी जिस कार्य को करने की मैं वर्षों से सोच रहा था। सत्य है सन्तों के दर्शन से मनुष्य के सभी पाप धुल जाते हैं। मुझे आश्चर्य है कि आज तक मुझे कोई संन्यासी न मिला यदि वह पहले ही मिल जाता तो कदाचित् मैं गृह-त्याग की बात पहले ही सोच लेता। हाँ! गृह-त्याग की बात तो मन में घुमड़ती रही पर गृह-त्याग करने के उपरांत जीवन की रूप-रेखा मैं निश्चित न कर सका था आज रूप-रेखा भी मिल गई। इसी की देर थी। आज ही मैं सब कुछ त्याग कर प्रव्रजित हो जाऊँगा, अब श्वासें व्यर्थ नहीं खोनी हैं। आज ही रात्रि ही में·········क्या ये नर्तकियाँ अपना शिल्प-प्रदर्शन समाप्त न करेंगी। रात्रि का एक प्रहर व्यतीत होने में अब कुछ ही काल शेष रहा होगा। अच्छा! अब मैं सोने का बहाना करता हूँ। मुझे सोता देखकर वे अपने शिल्प का प्रदर्शन स्वयं ही बन्द कर देंगी।"

कुमार मन में इस प्रकार विचार करके नर्तकियों में भ्रान्ति उत्पन्न करने के लिए वहीं सो गए। बहुत काल तक वे अनजाने ही नृत्य करती रहीं पर जब उन्हें सोता हुआ पाया तो वे भी थककर जो जहाँ थीं वहीं सो गईं। अधिक समय हो जाने के कारण कुमार भी तन्द्रालस जगत् में पहुँच गये थे। स्वप्न ने उन पर अपना एक झीना सा सुनहला

आवरण तान दिया। उसकी चल माया में वे विचरने लगे। कल्पना के सुनहले पंखों पर वे उस देश की यात्रा करने लगे। यात्रा करते-करते उन्होंने आकाश की ओर दृष्टि फेंकी तो उज्ज्वल वर्ण के किसी मनुष्य के उन्हें दर्शन हुए। उसकी छवि की समता में क्षितिसागर एक विन्दुमात्र लगता था। उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने जानना चाहा कि यह व्यक्ति है कौन, फलस्वरूप उन्होंने उससे प्रश्न किया।

"सूर्य-द्युति विनिन्दक! तुम कौन हो?"

"मैं मार हूँ। कुमार! मैं तुमसे कुछ कहने आया हूँ। देखो! तुम गृह त्याग का विचार अपने मन से निकाल दो। आज से ठीक सातवें दिन तुम्हारे लिए चक्ररत्न प्रकट होगा। यह रत्न वह आयुध है जिससे तुम चक्रवर्त्ती राजा होगे। इन्द्र तुम्हारे भृकुटि-विलास की प्रतीक्षा किया करेगा। वन-वन भटकने की बात छोड़कर तुम यहीं रहो। इतने ही दिवसान्तर से क्रमशः सातो रत्न तुम्हारे लिए प्रकट होंगे।"

"निर्वाण लाभ तथा विश्व कल्याण के समक्ष तुम्हारे सातों रत्न द्युतिहीन हैं। मुझे पथभ्रष्ट करनेवाले तुम कौन होते हो?"

"मैंने तो तुम्हारे सुख के लिए ही कहा। तुम्हारी भलाई सोचना मेरा कर्त्तव्य है। मैं नहीं चाहता कि तुम वन-वन कष्ट भोगो।"

"वाह! तुम और भलाई। तुम्हारा कार्य लोगों को पथ-भ्रष्ट करना है पर तुम मुझे पथभ्रष्ट नहीं कर सकते।"

"कुमार ! अभिमान किसी का भी नहीं रहा।"

"यह आत्मविश्वास बोल रहा है अभिमान नहीं।"

"तो देखूँगा तुम्हारा आत्म-विश्वास।"

"जाओ किसी अन्य को अपना शिकार बनाओ जाकर।"

"मैं कभी भी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ने का।"

"मैं तुमसे कभी विजित नहीं होने का।"

कुमार के इस वाक्य को सुनकर वह अट्टहास कर उठा। उसके अट्टहास से चौंककर उनकी निद्रा भंग हो गई। उन्होंने पलँग पर आसन मारकर देखा कि नर्तकियाँ बाजों आदि को लिए हुए ही सोई हुई हैं। वे गहन निद्रा में निमग्न हैं। उन सोई हुई नर्तकियों में से कुछ के मुख से कफ बह रहा था तो कुछ के शरीर लार से भींग गये थे। कोई दन्त कटकटा रही थीं तो कोई स्वप्नावस्था में अस्पष्ट कुछ बोल रही थीं। कुछ के मुख खुले हुए थे तो किसी के वस्त्र हटे होने से अति घृणोत्पादक गुह्य-स्थान दीख रहे थे। कुमार ने इन दृश्यों को देखा तो उन्हें और भी घृणा हो गई। भवन उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों वह सड़ती हुई लाशों का श्मशान हो। उन्हें उस समय तीनों संसार दुःख-दाह में दहते हुए प्रतीत हो रहे थे। वे दम घोट देने वाले भवन के वातावरण को छोड़कर उद्यान में निकल आए। इस समय अर्ध-निशा होने में एक घटिका शेष थी। उस समय निद्रा ला देनेवाला शीतल मन्द पवन चल रहा था। कुमार को छोड़ उसने सभी पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था।

रात्रि का गहन अन्धकार था। साँय-साँय के मिस निशा के श्वास-प्रश्वास आ-जा रहे थे। समय से पूर्व कोई उसकी निद्रा में बाधा न डाल दे इसके हेतु निस्तब्धता पहरा दे रही थी। वह जानती थी कि ये विलासी देवगण नृत्य के लिए, पहरा हलका होते ही, उसे जगाकर ले जायँगे।

आज की यह रात्रि किसी के लिए संयोग-गीत रच रही है तो किसी के लिए वियोग-गीत। इसके अंक में न जाने कितनी सुखद, सरस और स्वप्निल स्मृतियाँ पला करती हैं। अमा निशा के घोर तमस् प्रहर में एक जीव समग्र लोक का दुःख-पाश उच्छेदन करने की बात सोच रहा है। उसके विचारों का न आदि है और न अन्त ही। आज वह अपनी विचार-धारा को कार्यान्वित करना चाहता है। उसका मन बहुत व्याकुल है, एक क्षण का भी चैन नहीं। आज उसकी आयु धीरे-धीरे अट्ठाइस वर्ष की हो गई पर उसे अपनी विचार-वेलि का अन्त न मिला। वह उसका अन्त पाने के लिए अधीर हो रहा है। वह अपनी मनोदशा को अनुरूप साँचे में ढाल रहा है। उसके अन्तर की बह्नि को प्रासादों की शीतलता शान्त नहीं कर सकती। वह बह्नि तो त्याग-वारि से ही शान्त होगी। प्रासार का त्याग, स्त्री, पुत्र एवं परिवार का त्याग, कपिलवस्तु तथा उसमें बसनेवाली सारी प्रजा का त्याग, इस संसार के प्रत्येक भौतिक आकर्षणों का त्याग, अपना त्याग और अपने सर्वस्व का भी त्याग, केवल यही एक मार्ग स्वस्तिमय दीख रहा है।

अनाज का एक दाना निज को त्याग कर हजार गुना हो जाता है। प्रकृति के कण-कण में यह संदेश अंकित है। मन! तू भी अपने को त्यागकर स्वयं को विश्व रूप में पा ले। यदि तू अपना त्याग करेगा तो समग्र विश्व तेरा हो जायगा और तू समग्र विश्व का। आज उन्हें अपनी दिवंगत माता का स्मरण हो आया। उनकी माता उन्हें सात दिन का छोड़कर इस संसार से चली गई थीं। वे उन्हें त्याग का पाठ तो उनके जन्मकाल ही में पढ़ा गईं थीं। इस संसार में भला कोई भी किसी के लिये रुकता है जो तुम्हारी माता ही तुम्हारे लिए रुकतीं! फिर तुम किसके लिए रुकने की बात सोच रहे हो?......राहुल के लिए या यशोधरा के लिए?......क्या ये वहाँ भी तुम्हारे साथ जा सकेंगे? सोचो! क्या तुम्हें यह संसार और इस संसार का हर पदार्थ नश्वर नहीं दीख रहा है?......कुमार! यहाँ की किसी वस्तु पर, किसी प्राणी पर भरोसा करना तुम्हारी भारी भूल होगी। जो वस्तु टिकाऊ नहीं फिर उसका अवलम्ब ही क्यों लिया जाय? ज्ञानीजन सदा से ही इसको असार कहते आ रहे हैं। इसीलिए उन्होंने यहाँ की किसी भी वस्तु का भरोसा नहीं किया। उन्होंने अपना एक क्षण भी कभी व्यर्थ नहीं खोया है। वे जानते हैं कि समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता, हम सबको समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। प्रतीक्षित समय आने पर उससे लाभ उठाना चाहिए। यदि हम समय से लाभ नहीं उठाते

हैं तो यह हमारी त्रुटि है क्योंकि समय जो एक बार आता है वह कभी वापस नहीं लौटता। जो प्रतीक्षित समय से लाभ उठा लेते हैं उन्हीं के जन्म सार्थक हैं और जो लाभ नहीं उठा पाते वे हाथ मलते रह जाते हैं। समय से लाभ उठा लेना ही इस असार संसार का मुख्य सार है।

मनुष्य जीवन! यह भी नश्वर है। यह जो बोलता जीव है यदि वह निकल जाय तो शेष मिट्टी ही रह जाती है। यह शरीर उसी से उत्पन्न हुआ और एक दिन उसी में मिल जायगा। इस जीव को एक तन से दूसरे तन में भटकना पड़ता है। यह जीव ही कष्ट उठाता है। उसे जन्म-मरण के दुस्सह दुःख सहन करने पड़ते हैं। इन दुःखों से मुक्त होने के लिए मनुष्य को निर्वाण-प्राप्ति करनी चाहिए। ज्ञानीजन संसार के भोगों में लिप्त नहीं होते। वास्तव में वे मानव शरीर से वास्तविक लाभ उठा पाते हैं, शेष तो नारकीय जीवन व्यतीत करते, एक योनि से दूसरी योनि में भटकते रहते हैं। यह तन! जिस पर तू इतना गर्व करता है जिसके लिए तू दिन-रात भटकता रहता है, वह तेरा नहीं है और न इस संसार की कोई वस्तु ही तेरी है। यह जैसे आया है, वैसे ही चला जायगा। तुझे इस शरीर से लाभ उठाना चाहिए। तू उससे लाभ उठा! तू किसी के लिए भी मत ठहर! तू किसी के लिए ठहरता तो तब, जब कि तेरे लिए भी कोई ठहरा होता......।

मृत्यु ! यह एक मुहूर्त्त का भी अवकाश नहीं देती। इसका विधान अटल है। इसका हृदय इतना निर्मम है कि उसे किसी पर भी दया नहीं आती। इसकी अशुभ छाया जिस पर पड़ी वह नष्ट हो जाता है। यमराज के नियम की अटलता मृत्यु ही बनाये हुए है। इसने राजा-रंक सभी को एक ही घाट का पानी पिलाया है, सबको उसने एक मिट्टी की ही शय्या पर सुलाया है। उसने दोनों में से किसी को भी एक मुहूर्त्त तक का अवकाश नहीं दिया है।

हाँ ! मृत्यु को भी किसी का मुँह जोहना पड़ता है। वह 'समय' का मुँह जोहा करती है। समय के संकेतों पर ही सदा नाचा करती है। वह अति बलवान् है। उसके इतना प्रबल होते हुए भी मृत्यु जब-जब अवसर पाती तब-तब वह समय की अनुपम से अनुपम कृति अपने ध्वंसक करों से पल भर में मिटा देती है।

परिवर्त्तन ! यह मृत्यु का अनुयायी है। उसकी भाँति यह भी कठोर हृदय है। मनुष्य के अन्दर दो स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ होती हैं। पहली प्रवृत्ति समाज में रहने की और दूसरी सौन्दर्य-प्रियता की। परिवर्त्तन में भी यह दोनों प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं। अनुपम से अनुपम कृति को यदि वह अपने एक हाथ से बनाता है तो दूसरे हाथ से उसे मिटा भी देता है।

परिवर्त्तन की अग्रगामिनी मृत्यु और उसके स्वयं के

बन्धन से सदा के लिए मुक्त होने की तैयारी हो रही है। इस दिशा में कुमार अपना प्रथम चरण आगे बढ़ाने के हेतु अधीर हो रहे हैं। कोटि-कोटि कण्ठों से निस्सृत् आहें उनके कर्ण-विवर में प्रवेश कर रही हैं। समग्र प्राणी उनसे अपने उद्धार की प्रार्थना कर रहे हैं। उनसे अभ्यर्थना के स्वर में कह रहे हैं :—

"कुमार यही वह बेला है जिसकी हमें प्रतीक्षा थी। हम अभागे मानव उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जिस दिन आप बुद्धत्व प्राप्त कर हमारे लिए कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त कर देंगे। हमारा उचित मार्ग प्रदर्शन करेंगे।"

उक्त शब्द वायुमण्डल को पार कर शून्य में समा गये और कुमार के लिए कुछ विचार सामग्री छोड़ गये। कुछ काल मौन के उपरान्त वे वाणी में प्रत्युत्तर लेकर बोले :—

"यशोधरा जो अति कोमल हृदया है वह क्या मेरा वियोग सहन कर पावेगी ?"

कुमार के प्रत्युत्तर के बाद अट्टहास का भैरव रव होता है जो कुछ देर तक गगन में गूँजता रहता है। उस अट्टहास के क्रमशः शान्त होने पर गगन के किसी प्रकोष्ठ से यह ध्वनि आती है। "कुमार तुम इतने कायर हो इसकी मुझे किंचित् भी आशा नहीं थी। साधारण जन की भाँति तुम्हारा चित्त मल-ग्रसित है। क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि जब मृत्यु तुम दोनों का वियोग करा देगी तो क्या तुम उस घड़ी और उस

पल को रोक लोगे ? तुम वृथा के मोह जाल में क्यों फँसे हो ? विश्व तुम्हारे प्रतीक्षा पथ में सेज सजाये है इसका भी तो कुछ ध्यान करो ? यशोधरा, उसका यह शरीर, उसका यह रूप और उसकी यह आयु सभी तो नश्वर हैं। राहुल यह भी, पुरजन-परिजन, माता-पिता, बन्धु-बान्धव, यहाँ तक कि यह सम्पूर्ण जगत् और इस जगत् की प्रत्येक वस्तु सभी कुछ क्षणभंगुर है। यह जानते हुए तुम इसकी झूठी माया में क्यों फँसे हुए हो ? कुमार यह तुम्हारी महान् भूल है।"

वे कुछ क्षण मौन रहकर पुनः उक्त समस्या का रूपान्तर प्रस्तुत करते हैं—"यह राज पाट, धन-धरा, राजमहलों का यह असीम वैभव, मेरे बाद इसका क्या होगा ?"

"कुमार !" इतना तीव्र शब्द होता है कि कई क्षणों तक गगन में गूँजता रहता है और शून्य के रिक्त तारों में आश्रय ग्रहण करता है। "सावधान हो जाओ ! क्या यह तुमसे अनभिज्ञ है कि यह सारा का सारा यहीं पड़ा रह जायगा ? अपने अन्दर तुम इस मरीचिका को क्यों पाल रहे हो ? क्या तुमने अभी आर्त जनों की पुकार नहीं सुनी ? क्या तुम्हारे अन्तर का करुण-स्रोत सूख गया ?"

यह सुनकर वे विक्षिप्तों की भाँति कुछ देर तक उद्यान के इस कोने से उस कोने तक टहलते रहे। उनके पूर्व निश्चय में यह विकार कैसा ? इसको अपने मस्तिष्क से निर्मूल कर देना चाहिए। वे सोचते हैं :—

"मेरे अन्तर का करुण-स्रोत कैसे सूख गया ? यह असम्भव है। यह मेरी करुणा ही है जो मुझे 'त्याग' की ओर अग्रसर कर रही है। आर्तजन की पुकार सुनते-सुनते तो कभी-कभी मैं बच्चों की भाँति रो उठता हूँ। उनकी पुकार ने मुझे प्रासाद की दीवारों के अन्दर भी कभी चैन से नहीं बैठने दिया। आज यह प्रासाद, यह मुकुट, यह आमोद सब कुछ आग के दहकते अंगारों के सदृश दीख रहे हैं। इस अनुभूति के अतिरिक्त भी तो मुझे कुछ सोचने दो। मुझे कुछ विचार करने का भी तो समय दो।"

"तो अब तुम सोचोगे ?······कुमार ! क्या यह सोचने का समय है ? यह तो कर्म करने का समय है। ज्ञानी पुरुषों ने सदा ही समय से लाभ उठाया है। तुम भी समय से लाभ उठाओ। उठो ! शीघ्रता करो ! यही समय है। अभी सब प्राणी गहरी निद्रा में निमग्न हैं। सभी तुम्हारे महाभिनिष्क्रमण की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

इस भीषण अन्तर्द्वन्द्व के उपरान्त कुमार का मस्तिष्क कुछ क्षणों के लिये विचार-शून्य हो गया। अर्ध रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। आज उन्होंने दिन में जिस परिव्राजक को देखा था, उसके चरित्र की छाप उनके हृदय पर इतनी गहरी पड़ी कि आज वे उस दशा में स्वयं आने का कार्यक्रम बना चुके हैं। उनकी चेतना कुछ क्षण के लिए अलौकिक जगत् से लौट आई। शान्त भाव से उन्होंने आकाश की ओर देखा। आकाश

मेघाच्छादित था। आषाढ़ की पूर्णिमा में रह रह कर विद्युत चमक रही थी। उनके ऊपर देखते ही विद्युत इस प्रकार चमकी मानों किसी ने प्रकृति के मूक पटल से किसी सन्देश का संकेत किया हो मन में भी विद्युत-निभ कुछ विचार आए और चले गये। उन्होंने सोचा :—

"चेतन संसार के प्राणी ही नहीं रसना हीन वस्तुएं भी अपनी मूक भाषा में मुझसे कुछ कह रही हैं। कदाचित् वे भी हमारे हृदय की दशा को जान गई हैं। यही कारण है कि तारे ने टूटकर मुझे गृह त्याग का संकेत दिया। मुझे भी अपना प्रासाद का जीवन समाप्त कर देना चाहिए। इसी का यह काल है। इसी की यह वेला है। अब फिर देर क्यों ?··· नहीं ! कुछ ठहरो। क्यों ?······एक दृष्टि चलते-चलते राहुल पर भी तो डालते जाओ ! हाँ ! यह ठीक, अभी तक मैंने उसे देखा ही नहीं कि वह कैसा है ? उसे अवश्य ही देखना चाहिए। वह यशोधरा के पास लेटा होगा। आज उसने भी मेरी प्रतीक्षा की होगी। उसने भी चाहा होगा कि मैं एक बार अपनी सन्तान को देख लूँ ····पर सावधान······न देखो ! तुम राग की ओर अग्रसर हो रहे हो। सोचो ! उसे देखकर क्या तुम्हारे अन्दर वात्सल्य का स्फुरण न होगा ? तुम जो ताना-बाना बुन रहे हो उसमें तुम स्वयं ही फँस जाओगे।······ नहीं ! मैं अब इतना दुर्बल नहीं हूँ जो कि उसमें फँस जाऊँ। अभी तुमने नाम-रूप का प्रभाव नहीं जाना है तुम उससे

अनभिज्ञ हो इसीलिए ऐसा कह रहे हो !……नहीं मैं उससे अनभिज्ञ नहीं हूँ पर फिर भी मैं चलते समय उसे एक दृष्टि से देख लूँ बस ! इसके उपरान्त मुझे एक क्षण का भी समय मत देना। बस मैं गया और आया। अच्छा ! तो तुम उसे देख लो पर बहुत सावधानी से एक-एक डग गिनकर जाना और सावधानी से लौट आना।"

उनके मन में इस प्रकार सङ्कल्प-विकल्प चल रहे थे। यहाँ तक सोचकर यही निर्णय किया कि वे यशोधरा को चलते-चलते एक नजर देख लें। वे सावधानी से वहाँ से यशोधरा के प्रसव-कक्ष की ओर चल दिये। आज जिस परिस्थिति के मध्य वे शयन-कक्ष की ओर जा रहे थे उसका उनके जीवन में प्रथम और अन्तिम अनुभव था। उनका मन किसी अन्य लोक में था और उनके पैर उस लोक की भूमि पर पड़ रहे थे। वे इस अन्दाज से चल रहे थे जैसे कोई स्वप्नावेश में चल देता हो। वे दरवाजे पर आकर ठिठक गये। उनका हाथ बन्द पट खोलने के लिये बढ़ा। कई बार दरवाजे का स्पर्श करके वे हाथ इस प्रकार पीछे हटा लेते थे मानों उनका हाथ किसी अङ्गार पर पड़ जाता हो। इसी उधेड़बुन में वे कई बार हाथ को वहाँ तक ले गये और उसे हटा लिया। अन्तमें कुछ क्षण ठहरकर उन्होंने सावधानी से दरवाजा खोला। प्रथम चरण बढ़ा। वे जिसके लिये आये थे उसको तो यशोधरा अपनी एक भुजा से छिपाये हुये थी। इतने में

उनके अन्तर से कोई बोल उठा—"कुमार! शीघ्रता करो" अन्तर का आदेश सुनकर वे वहाँ अधिक देर न ठहर सके। एक झटके के साथ ही वे प्रसव-कक्ष से बाहर आ गये। वाटिका को पार करते हुये वे छन्दक के पास आये और उसे जगाकर कन्तक लाने को कहा। वह आश्चर्य के स्वर में बोला—

"इस समय कन्तक! कुमार का क्या विचार है? क्या घूमने के लिए?

"धीरे बोलो छन्दक! शीघ्रता करो कन्तक को निकाल लाओ।"

अब उसको कुछ शङ्का हुई—"कुमार वैसे कभी इतना कड़ा रुख नहीं दिखलाते थे पर आज वे ऐसा क्यों कह रहे हैं? ·····अवश्य ही इसमें कोई रहस्य है। ··· इसमें और रहस्य हो ही क्या सकता है। आज उन्होंने प्रव्रजित को देखा था। क्या वे प्रव्रज्या लेने जा रहे हैं? ···"यह प्रश्न जैसे ही उसके मस्तिष्क में आया वैसे ही उसने वाणी में अनुनय का साज ले प्रार्थना की—"देव! मैं अपने हाथों ऐसा अनर्थ नहीं कर सकता! जन्म भर जिनका नमक खाया है उनके साथ मैं विश्वासघात कैसे कर सकता हूँ? देव! ऐसा न करिये। आपके बाद महाराज और महारानी की क्या दशा होगी वह वर्णन नहीं की जा सकती। वे अन्न-जल त्याग देंगे। तुम्हारे वियोग में तड़प-तड़प कर प्राण खो देंगे। गोपा और कुमार, दोनों ही अनाथ हो जायेंगे;

वे ही क्यों; सम्पूर्ण कपिलवस्तु ही अनाथ हो जायगी।''

"मैं माता-पिता, परिवारादि के लिये समग्र विश्व की आहों की उपेक्षा कर दूँ? ऐसा तो मैं कदापि नहीं कर सकता। मैं अपने हृदय पर पत्थर रखकर इन सबकी उपेक्षा कैसे कर दूं? छन्दक! आगे बढ़ो और विश्व-कल्याण के महान् कार्य में मेरी सहायता कर कल्याण के भागी बनो। क्षणिक सुखों की माया में मत भूलो। शीघ्रता करो। कन्तक को ले आओ!''

छन्दक अधिक तर्क न कर सका। कहाँ वह दास और कहाँ वे स्वामी! वह मौन होकर अस्तबल से कन्तक को ले आया। सारथी का हृदय उस समय फटा जा रहा था, जब वह अस्तबल से कन्तक को ला रहा था। वह उसपर जीन आदि कसने लगा। कुमार के पास इतना समय कहाँ भला, जो वे जीन कसने तक ठहरे रहते अतः वे उससे बोले—

"भद्र छन्दक! उस पर जीनादि कसकर देर मत करो मेरे पास अब अधिक समय नहीं है। मेरी आत्मा फाटक के बाहर के संसार में जाने के लिये अधीर हो रही है। शीघ्रता करो भद्र!''

वह कन्तक को शीघ्रता से सजाकर ले आया। उन्होंने कन्तक को सम्बोधित करके कहा—"तात! कन्तक!! आज तू मेरी इस कार्य में सहायता कर! मुझे मेरे गन्तव्य तक शीघ्र हो पहुँचा। आज तेरी गति की परीक्षा है। मैं बुद्धत्त्व प्राप्त कर देवताओं सहित समग्र लोक तारूँगा।'' इतना कह

कर वे उसकी पीठ पर सवार हो गए। छन्दक भी अपने अश्व पर सवार होकर उनके पीछे हो लिया। कुमार सारथी सहित महाद्वार पर पहुँच गये। इस महाद्वार का एक-एक कपाट खोलने के लिये प्रत्येक में एक-एक हजार आदमी लगते थे। उस द्वार पर पहुँच कर वे ठहरे ही थे कि आकाश में स्थित मार जो छाया की भाँति उनका पीछा कर रहा था पुनः उन्हें प्रलोभन देने लगा—"मार्ष ! वन में मत जाओ। आज से सातवें दिन तुम्हारे लिये चक्र-रत्न प्रकट होगा। दो हजार छोटे-छोटे द्वीपों सहित चारों महाद्वीपों पर तुम राज्य करोगे।

अतः मार्ष लौट चलो। अभी कुछ भी तो नहीं बिगड़ा है।"

"मार ! मुझे राज्य से कोई काम नहीं। मैं तो साहस्रिक लोक धातुओं को उन्नादित कर बुद्धत्व प्राप्त करूँगा।"

"आज से जब कभी कामना सम्बन्धी, द्रोह सम्बन्धी या हिंसा सम्बन्धी वितर्क तुम्हारे मन में उत्पन्न होगा उस समय मैं तुम्हें समझूँगा।"

इतना कहकर मार ने मौका ताकते, छाया की भाँति जरा भी अलग न होते हुये, उनका पीछा करना प्रारम्भ किया। इस घटना को कुमार और मार ही जान सके और कोई नहीं। इस घटना से अवकाश पाते ही वे आगे महाद्वार की ओर बढ़े तो देखा कि वह खुला हुआ है। वे दोनों व्यक्ति फाटक पार कर गये। उसे त्यागते समय उनमें देश-प्रेम उमड़ आया और उन्होंने अन्धकार की गोद में सोती कपिलवस्तु को लोचनों

में भर लिया और पुनः आगे की ओर चल दिये। उनके चलते समय सकल दिशायें संगीतमयी हो गईं। कन्तक सरपट दौड़ा चला जा रहा था। आज उसे वायु से पाला पड़ गया था वह अपने स्वामी को पीठ पर लिये उड़ा चला जा रहा था। आज जैसा तेज वह कदाचित् ही कभी चला हो। आज वह कुमार का ऋण चुका देना चाहता है। उसके सामने मार्ग ही मार्ग, चलना ही चलना था इसके अतिरिक्त और कोई दूसरी वस्तु नहीं थी। आज न तो कुमार को उत्तुङ्ग प्राचीरें ही रोक सकीं और न इससे भी उत्तुङ्ग मोह की लौह कारायें ही। वे सबकी उपेक्षा करके बड़े गर्व के साथ चले जा रहे हैं। प्रहरियों की, लौह द्वार की तथा सभी की उपेक्षा वे कर चले। देखो! कन्तक की पीठ पर जो सरपट जा रहे हैं वे कुमार ही हैं। उन्होंने एक ही रात में तीन राज्य की सीमाओं को पार किया और अन्त में अनोमा नदी के तट पर पहुँच गये। यह ब्राह्म-मुहूर्त्त की बेला थी। उन्होंने छन्दक से पूँछा—"भद्र! यह कौन सी नदी है?"

"अनोमा नदी देव!"

"तो हमारी प्रव्रज्या यही अनोमा होगी।" इतना कहकर उन्होंने घोड़े के एड़ी लगाई और अड़तालीस हाथ चौड़ी नदी पलक भाँजते पार कर ली। नदी पारकर वे दोनों जने घोड़ों की पीठ से उतरकर रुपहली बालुकामयी पृथ्वी पर खड़े हुए।

"भद्र छन्दक! यह मुकुट, राजसी वस्त्र और यह खड्ग

महाराज को देकर मेरा सादर प्रणाम निवेदन करना। उनसे यह भी निवेदन करना कि कुमार ज्ञान-प्राप्ति के हेतु गये हैं ज्ञान-प्राप्ति के उपरान्त ही वे लौटकर दर्शन करेंगे।"

"देव! मैं भी प्रव्रजित होऊँगा।"

"भद्र! तुम कदापि प्रव्रजित नहीं हो सकते।"

"मैं लौटकर महाराज को कैसे मुँह दिखा सकूँगा। मुझमें तो इतना साहस है नहीं। मैं लौटकर करूँगा भी क्या! आपके साथ रहकर शेष जीवन आपकी सेवा करता हुआ व्यतीत कर दूँगा।"

"भद्र! तुम वापस जाकर हमारे दुःखी माता-पिता को ढाँढस देना। तुम्हारा लौट जाना ही श्रेष्ठ है।"

इस प्रकार उन्होंने छन्दक को समझाया। जैसे-तैसे करके उसका दुःखावेग शांत हुआ। इससे पूर्व तो उसके आँसू रुकने का भी नाम नहीं ले रहे थे। छन्दक को सावधान करने के उपरांत वे कन्तक की ओर मुड़े और कहने लगे—"कन्तक! तूने मुझे बुद्धत्व की ओर अग्रसर किया एतदर्थ तुझे शतशः धन्यवाद! तुझे मैं परमपद लाभ कराता हूँ। कन्तक के शरीर से क्षणभर में ही प्राण वायु निकल गया और उसने दिव्य लोक को प्राप्त किया। इनसे निवृत्त हो अब वे प्रव्रज्या की क्रिया सम्पन्न करने के लिए बढ़े। उन्होंने अपने केशों को स्वयं दाहिने हाथ में खड्ग और बाएँ में जूड़ा लेकर उसे काट डाला। अनोमा के जल में नहाकर उससे आचमन किया और सभी राजसी वस्तुओं को त्याग, सन्यासी का वेष धारण कर लिया। छन्दक रोता-काँदता कपिलवस्तु की ओर लौट कर चल दिया।

लेखक की अन्य कृतियाँ

बुद्ध-धर्म सम्बन्धी रचनाएँ :—

(१) निर्वाण की ओर (पाण्डुलिपि)।

(२) बुद्धायण (दोहा-चौपाइयों में) (तैयार हो रही है)।

(३) अश्व पाली (अतुकान्त) (पाण्डुलिपि)।

काव्य ग्रंथ :—

(४) शान्ति दूत (महात्मा गान्धी) (पाण्डुलिपि)।

(५) ध्रुव परीक्षा (छन्दों में) (,,)।

(६) कल्लोलिनी (कविता संग्रह) (,,)।

उपन्यास

(७) शव का उपहार (पाण्डुलिपि)।

कहानी संग्रह

(८) अविवाहित कर्त्तव्य (पाण्डुलिपि)।

निबन्ध-पुस्तक

(९) निबन्ध-निचय (पाण्डुलिपि)।

एकांकी संग्रह

(१०) मल्लिका (पाण्डुलिपि)।

मिलने का पता :—

बसंत प्रकाशन कुञ्ज,

भूपति पट्टी,

फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश)।